तरुचिन्तन
2022

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

तरुचिन्तन
2022

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

संरक्षक

श्री अरूण सिंह रावत, भा.व.से.
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

सम्पादक मंडल

प्रधान सम्पादक

डॉ. सुधीर कुमार
उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

सम्पादक

डॉ. गीता जोशी
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

सहायक सम्पादक

श्री रमाकान्त मिश्र
मुख्य तकनीकी अधिकारी (मीडिया एवं विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

सम्पादन सहयोग

श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा)
श्री अवनीश कुमार, हिन्दी अनुवादक

पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आंकड़ें और विचार रचनाकारों के अपने हैं, सम्पादक मंडल का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघरः न्यू फॉरेस्ट
देहरादून – 248006 (उत्तराखण्ड), भारत

महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघरः न्यू फॉरेस्ट, देहरादून–248006
(आई.एस.ओ. 9001:2008 प्रमाणित संस्था)

सत्यमेव जयते

संरक्षक की कलम से...

सांस्कृतिक और भाषाई दृष्टि से हमारा देश बहुत समृद्ध है। देश की भाषाई संपन्नता को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं द्वारा भारत के संविधान में भाषाओं के लिए अलग से आठवीं अनुसूची का प्रावधान किया गया जिसमें कुल 22 भाषाऐं सम्मिलित हैं। इस भाषाई विविधता के बावजूद भारत जैसे विशाल देश में राजभाषा हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में महत्वपूर्ण स्थान हासिल है। हिंदी के इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए 14 सितंबर 1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकृत किया गया।

जहाँ पहले हिंदी का प्रयोग आम बोल–चाल के साथ–साथ अधिकांशतः पत्र–पत्रिकाओं और साहित्यिक रचनाओं तक सीमित था अब इसका प्रयोग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में भी तेजी से बढ़ रहा है। अन्य वैज्ञानिक विषयों के साथ ही मेडिकल के विषयों की पढ़ाई को हिंदी में करने की पहल सराहनीय है। निश्चित तौर पर इससे न सिर्फ पठन–पाठन की प्रक्रिया सुगम होगी बल्कि मौलिक चिंतन और शोध को भी बढ़ावा मिलेगा। यह प्रसन्नता का विषय है कि भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की वार्षिक हिंदी पत्रिका 'तरूचिंतन' न सिर्फ साहित्यिक रचनाओं वरन् वानिकी एवं अनुसंधान के जटिल विषयों को भी हिंदी में प्रकाशित कर संघ के दिशानिर्देशों के आलोक में राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार में प्रयासरत है।

परिषद्, राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के निरंतर प्रयास के अन्तर्गत परिषद् में वार्षिक पत्रिका 'तरूचिंतन' के प्रकाशन के साथ ही समय–समय पर विभिन्न आयोजन जैसे राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला, राजभाषा हिंदी दिवस, हिंदी पखवाड़ा आदि तो आयोजित किए ही जाते हैं, इसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाता है कि परिषद् मुख्यालय से होने वाला पत्राचार अधिकाधिक हिंदी/द्विभाषी में किया जाए। ऐसा करना न सिर्फ राजभाषा दायित्वों के निर्वहन हेतु जरूरी है बल्कि जन–सामान्य तक सीधी पहुँच बनाने के लिए भी आवश्यक है। परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन समिति कार्यरत है जो प्रत्येक तिमाही में परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन की अद्यतन स्थिति की विस्तृत समीक्षा करती है और इस संबंध में यथेष्ट दिशा निर्देश जारी करती है।

परिषद् मुख्यालय एवं भा.वा.अ.शि.प. के विभिन्न संस्थानों से हिंदी के अनेक प्रकाशन यथा वानिकी समाचार, आफरी दर्पण, वन अनुसंधान ई–पत्रिका, वन संज्ञान, वर्षारण्यम आदि भी प्रकाशित किये जाते हैं। लेकिन 'तरूचिंतन' परिषद् का एक विशिष्ट हिंदी प्रकाशन है जिसमें साहित्य की विभिन्न विधाओं में सामग्री प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका में वानिकी एवं पर्यावरण पर ज्ञानवर्धक लेखों सहित अन्य विभिन्न विषयों पर सुरूचिपूर्ण लेख, संस्मरण, कविता, कहानी इत्यादि प्रकाशित किए जाते हैं।

मैं तरूचिंतन 2022 के इस सुरूचिपूर्ण अंक के सफल प्रकाशन हेतु डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक (विस्तार), भा.वा.अ.शि.प. एवं उनकी टीम तथा इस अंक के सभी लेखकों को हार्दिक बधाई प्रेषित करता हूँ।

अरूण सिंह रावत

उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघरः न्यू फॉरेस्ट, देहरादून–248006

प्रधान संपादक की कलम से...

एक लोकतांत्रिक देश के काम–काज में पारदर्शिता का होना आवश्यक है। यह पारदर्शिता तभी हासिल की जा सकती है जब जन–साधारण के संबंध में बनाई जा रही नीतियां और उनके लिए किए जाने वाले कार्यों की जानकारी जनभाषा में उपलब्ध हो। हमारे देश में जनभाषा हिंदी सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है तथा संविधान में इसे राजभाषा का दर्जा देते हुए संघ सरकार के सभी शासकीय कार्यों की भाषा निर्धारित किया गया। केंद्र सरकार के अधीन एक स्वायत्त परिषद् होने के नाते भा.वा.अ.शि.प. भी अपने अधिदेशित कार्यों को जनसाधारण के मध्य राजभाषा हिंदी में विस्तारित करने की दिशा में सतत प्रयत्नशील रहती है। भा.वा.अ.शि.प. की वार्षिक पत्रिका तरूचिंतन इस दिशा में एक ठोस कदम है।

भा.वा.अ.शि.प. में मूल रूप से वानिकी से संबंधित विभिन्न विषयों के अनुसंधान संबंधी कार्य संपादित किए जाते हैं। पर्यावरण एवं वनों से संबंधित नीतियां, वन आधारित उत्पाद एवं वनों के किनारे रहने वाले लोगों को वनोपेज से रोजगार इत्यादि विषयों पर परिषद् महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। परिषद् इन विषयों पर सुग्राह्य भाषा में सामग्री तैयार कर हितधारकों तक पहुंचा रही है। परिषद् की वार्षिक पत्रिका 'तरूचिंतन' भी भा.वा.अ.शि.प. एवं इसके संस्थानों के साहित्यिक एवं रचनात्मक कार्यों के प्रकाशन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

'तरूचिंतन' में परिषद् द्वारा किए गए महत्वपूर्ण अनुसंधानात्मक कार्यों पर आलेखों के साथ–साथ अन्य अनेक विषयों पर वैविध्यपूर्ण रचनाओं को भी सरल भाषा में प्रकाशित किया जाता है। इसमें भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों के अधिकारी एवं कर्मचारी तो अपनी रचनाएं भेजते ही हैं साथ ही उनके परिजनों की साहित्यिक अभिरूचि भी इसमें प्रकट होती है। निश्चित तौर पर 'तरूचिंतन' के प्रकाशन से परिषद् में राजभाषा हिन्दी में कार्य करने के परिवेश को प्रोत्साहन मिला है जिससे राजभाषा दायित्वों के निर्वहन में महत्वपूर्ण मदद मिलती है।

पत्रिका में कुल पांच खंड हैं। पहला खंड परिचय का है जिसमें परिषद् मुख्यालय के विभिन्न निदेशालयों के प्रमुख कार्यों के बारे में जानकारी दी जाती है। राजभाषा खंड में वर्ष की राजभाषा गतिविधियों का संक्षिप्त सचित्र ब्यौरा प्रकाशित किया जाता है। वानिकी खंड में वानिकी एवं पर्यावरण से संबंधित विषयों पर स्तरीय एवं समीचीन लेख प्रकाशित किए जाते हैं। विविधा खंड में विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक लेख प्रकाशित किए जाते हैं तथा कविता, ललित निबंध इत्यादि साहित्यिक प्रवृत्ति की रचनाओं को लालित्य खंड में स्थान दिया जाता है।

'तरूचिंतन' के इस अंक के रुचिर संकलन–संपादन एवं प्रस्तुतिकरण के लिए मैं डॉ. गीता जोशी, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार) एवं उनके दल के सभी सदस्यों को बधाई देता हूँ। साथ ही मैं इस अंक के सभी लेखकों को उनके महत्वपूर्ण लेखों के लिए भी बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह अंक आपका ज्ञानवर्धन तथा मनोरंजन करने में सहायक होगा।

डॉ. सुधीर कुमार

सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघरः न्यू फॉरेस्ट, देहरादून–248006

संपादक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् का लक्ष्य अनुसंधान, शिक्षा और विस्तार द्वारा सतत आधार पर वनों से संबंधित समस्याओं को निपटाने तथा लोगों, वनों और पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होने वाले संयोजनों को प्रोन्नत करने के लिए सूचना, प्रौद्योगिकियों एवं समाधानों को सृजित, परिरक्षित, प्रसारित एवं उन्नत करना है। निश्चित ही इस प्रक्रिया को कार्यान्वित करने में हितधारकों के साथ संचार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस क्रम में भा.वा.अ.शि.प. की वार्षिक हिंदी पत्रिका 'तरूचिंतन' वानिकी अनुसंधानों की जानकारी और लाभों को राजभाषा हिंदी में सामान्य–जन तक पहुंचाने के महती प्रयास में सशक्त भूमिका निभा रही है।

'तरूचिंतन' में साहित्यिक रचनाओं के साथ ही वानिकी जैसे विषयों के बारे में हिंदी में मौलिक लेख प्रकाशित किए जाते हैं। देश की सबसे अधिक भू–भाग में बोली और समझी जाने वाली देश की राजभाषा हिंदी में प्रकाशित इन लेखों से बहुत सारे हितधारकों तक वांछित सूचनाएं पहुंचाने में मदद तो मिलती ही है साथ ही इससे राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार में भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।

हिंदी विश्व में तीसरी सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। जाहिर है कि हिंदी ही हमारे देश में सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा भी है। ऐसे में यह सहज स्वीकार्य है कि वानिकी जैसे विषय से संबंधित शोध और लेखों को हिंदी में प्रकाशित करने से उनकी पठनीयता का दायरा विस्तृत होता है जो कि संघ की राजभाषा नीति के दायित्वों के निर्वहन में भी सहायक होता है।

'तरूचिंतन' के इस अंक में वानिकी, विविधा और लालित्य खंडों के अंतर्गत कुल 29 लेख तथा 4 कवितायें प्रकाशित की गई हैं। 'राजभाषा खंड' में परिषद् और इसके संस्थानों में इस वर्ष में की गई उल्लेखनीय राजभाषा गतिविधियों पर संस्थानवार रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है। पत्रिका में वानिकी से संबंधित महत्वपूर्ण आलेखों में 'परागणकों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव', 'बांस छेदक का प्रबंधन', 'परावैद्युत तापन', 'चमत्कारिक हल्दी' आदि हैं। इसके साथ ही 'विविधा' एवं 'लालित्य' खण्ड में भी रोचक एवं ज्ञानवर्धक रचनाएं शामिल की गई हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'तरूचिंतन' का यह अंक आपके ज्ञानवर्धन और मनोरंजन में सहायक होगा और हमेशा की तरह आपको पसंद आएगा।

डॉ. गीता जोशी

तरुचिन्तन
2022

संदेश

परिचय

राजभाषा

वानिकी

विविधा

लालित्य

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
	संदेश	
I.	संरक्षक की कलम से	III
ii.	प्रधान संपादक की कलम से	V
iii.	संपादक की कलम से	VII
	परिचय	
1.	भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्	01
2.	प्रशासन निदेशालय	02
3.	अनुसंधान निदेशालय	03
4.	विस्तार निदेशालय	04
5.	शिक्षा निदेशालय	06
6.	निदेशक (अंतराष्ट्रीय सहयोग)	07
	राजभाषा	
7.	भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ	09
8.	शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में राजभाषा गतिविधियाँ	12
9.	वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ	14
10.	हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में राजभाषा गतिविधियाँ	16
11.	वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद में राजभाषा गतिविधियाँ	18
12.	वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर में राजभाषा गतिविधियाँ	19
13.	वन उत्पादकता संस्थान, राँची में राजभाषा गतिविधियाँ	21
14.	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू में राजभाषा गतिविधियाँ	22
15.	वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में राजभाषा गतिविधियाँ	23
16.	उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में राजभाषा गतिविधियाँ	25

वानिकी

17. पलाश (*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*): एक मनोहारी वृक्ष प्रजाति 26
–डॉ. अदिति टेलर, डॉ. अंजलि जोशी एवं डॉ. पूजा शर्मा

18. दिव्य चमेली (*तमिलनाडिया यूलिगिनोसा*): एक औषधीय वृक्ष 29
–श्री रवि शंकर प्रसाद एवं श्री रिकेश कुमार

19. परागणकों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव 31
–श्री पवन कुमार, श्री अखिल कुमार एवं सुश्री आँचल वर्मा

20. *कॉमिफोरा वाइटी* (गुग्गुल): भारतीय शुष्क क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण औषधीय प्रजाति 34
–डॉ. अंजलि जोशी, डॉ. अदिति टेलर एवं डॉ. पूजा शर्मा

21. पहाड़ी बांस – पहाड़ी समुदायों की जीवन–रेखा 38
–सुश्री श्वेता भिमटा, सुश्री नीरजा ठाकुर, श्री भुवन वर्मा एवं डॉ. वनीत जिश्टू

22. बसंत– (*हाईपेरिकम परफोरेटम*): औषधीय जड़ी–बूटी 40
–डॉ. जोगिंद्र सिंह, डॉ. जगदीश सिंह, एवं डॉ. रंजीत कुमार

23. कटे एवं सूखे बांस छेदक – *क्लोरोफोरस एन्यूलेरिस* फैब (*कोलिआप्टरा सेराम्बाइसिडी*) का जीवन चक्र और प्रबंधन 42
–डॉ. के. पी. सिंह एंव श्री मुकेश भट्ट

24. शुष्क क्षेत्र में मिलने वाले कैर फलों के प्रसंस्करण, संरक्षण और पैकेजिंग की नवीनतम विधि एवं उनका पोषक तत्वों पर प्रभाव 44
–डॉ. माला राठौर

25. स्थानीय वृक्ष प्रजातिः वन उत्पादकता वृद्धि में अहम योगदान 46
–श्री मनीष कुमार विजय एवं डॉ. ननिता बेरी

26. मैदा लकड़ी (*लिटसिया*) : अगरबत्ती उद्योग हेतु महत्वपूर्ण प्रजाति 49
–श्री डी. पी. झारिया, एवं डॉ. ननिता बेरी

27. महुआ के फूल–आय का अतिरिक्त व सतत स्रोत 51
–श्री निखिल वर्मा, डॉ. फातिमा शिरीन, श्री कौशल त्रिपाठी एवं श्री नीरज प्रजापति

28. 'बेखल' (*प्रिंसेपिया यूटिलिस* रॉयल), एक अल्पज्ञात महत्वपूर्ण वन औषधि 52
–श्री पंकज कुमार, डॉ. वनीत जिश्टू एवं सुश्री मीनाक्षी

29. थुम : बीज एवं कृत्रिम पुनर्जनन तकनीक 53
—श्री पीताम्बर सिंह नेगी

30. परावैद्युत तापनः लकड़ी को सुखाने के लिए पर्यावरण के अनुकूल एक विकल्प 56
—श्री रोहित शर्मा एवं श्री राकेश कुमार

31. चंदन के संभावित पोषक पौधे एवं वृक्ष 61
—डॉ. संदीप चक्रवर्ती, श्री शिवराजा के. एस., श्री मंजुनाथ एल.,
श्री बी.एस. चंद्रशेखर एवं श्री वी.एस.शेट्टापनवर

32. *बोनिंघुसीनिया अल्बिफ्लोरा* : एक कीट विकर्षक एवं वानस्पतिक कीटनाशक 64
—सुश्री सविता कुमारी बन्याल

33. चिरौंजीः मध्य भारत के आदिवासियों की अजीविका का महत्वपूर्ण स्रोत 66
—श्री सौरभ दुबे एवं सुश्री निकिता राय

34. *प्रूनस आर्मेनियका* (चूली) : एक महत्वपूर्ण जंगली खाद्य वृक्ष प्रजाति 68
—डॉ. स्वर्णलता, सुश्री वर्षा एवं श्री ऋषभ शर्मा

35. चमत्कारिक हल्दी : प्रकृति का एक वरदान 71
—डॉ. बी. पी. टम्टा, श्री अरूण उनियाल, श्री पुष्पेन्द्र सिंह,
श्री सचिन कुमार एवं श्री रोहन सोलंकी

36. औषधियों का कोष – शीत मरुस्थल लद्दाख 74
—सुश्री आस्था चौहान, डॉ. वनीत जिश्टू, सुश्री हसीना बानो एवं श्री पंकज कुमार

विविधा

37. जैव अर्थव्यवस्था – सतत विकास की कुंजी 76
—श्री अजय कुमार

38. हरित हाइड्रोजनः भविष्य की उर्जा 79
—श्री अवनीश कुमार

39. पर्यावरण और धर्म 80
—श्री दीना नाथ पाण्डेय

40.	ट्रांस–हिमालयः एक अनूठा पारितंत्र –श्री दुष्यंत कुमार	82
41.	प्लास्टिक का विकल्पः समय की माँग –श्रीमती नीलू सिंह	85
42.	हिंदी भाषा का मौजूदा स्वरूप –श्री कैलाश चन्द गुप्ता	87
43.	अनुवाद और उसके प्रकार – एक झलक –श्रीमती पूंगोदै कृष्णन	89
44.	विलुप्त होते जल स्रोत –डॉ. राजेश कुमार मिश्रा	93
45.	विश्व हिंदी दिवस –श्री विनयचंद्रन. एम.	94

लालित्य

46.	संघर्ष ही जीवन है –श्री अनूप कुमार वर्मा	96
47.	पर्यावरण हमारा है –श्री आशीष सिंह बिष्ट	97
48.	प्रकृति और जीवन –श्री लक्ष्मीकान्त तिवारी	98
49.	वन जीवन है –श्री रमाकान्त मिश्र एवं श्रीमती रेखा मिश्र	99

1 भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की यात्रा की शुरूआत उन्नीसवीं सदी के अंत में भारत में वैज्ञानिक वानिकी के आगमन और 1878 में देहरादून में वन विद्यालय की स्थापना के साथ हुई थी। तदनंतर 5 जून 1906 को देश में वानिकी अनुसंधान को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से तत्कालीन शासन द्वारा इंपीरियल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना की गई। इसके पश्चात देश के वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एवं विस्तार आवश्यकताओं व पर्यावरण हितों को देखते हुए 1986 में एक छत्र संगठन के रूप में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.) की स्थापना की गई। भा.वा.अ.शि.प. को 1 जून 1991 को तत्कालीन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के तहत एक स्वायत्त परिषद् घोषित किया गया और सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के तहत एक सोसाइटी के रूप में पंजीकृत किया गया।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् सोसाइटी की आम सभा, भा.वा.अ.शि.प. की सर्वोच्च प्राधिकारी है, जिसके प्रमुख, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के केंद्रीय मंत्री होते हैं। परिषद् के महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प. सोसाइटी के मुख्य कार्यकारी होते हैं।

भा.वा.अ.शि.प. का मुख्यालय उत्तराखंड राज्य की राजधानी देहरादून में है। परिषद्, राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान प्रणाली में एक सर्वोच्च निकाय है जो आवश्यकता आधारित वानिकी अनुसंधान, वानिकी शिक्षा एवं विस्तार हेतु समर्पित है। परिषद के अन्तर्गत कुल 9 अनुसंधान संस्थान और 5 केन्द्र हैं। इनमें से प्रत्येक संस्थान का अपना खुद का इतिहास है और ये अनुसंधान संस्थान अपने क्षेत्र की विशेष भौगोलिक उपस्थिति में उपजी वानिकी पर शोध के लिए पारंगत हैं तथा भा.वा.अ.शि.प. के छत्र तले अपने राज्यों के क्षेत्राधिकार में वानिकी क्षेत्र में अनुसंधान, विस्तार और शिक्षा का निर्देशन और प्रबंधन कर रहे हैं। क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान जोधपुर, देहरादून, शिमला, हैदराबाद, कोयम्बत्तूर, रांची, बेंगलुरू, जोरहाट एवं जबलपुर में स्थित हैं। इनसे संबंधित अनुसंधान केंद्र अगरतला, आइजॉल, प्रयागराज, छिंदवाड़ा और विशाखापत्तनम् में स्थित हैं।

संकल्पना

वन पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण और वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से दीर्घकालिक पारिस्थितिक स्थिरता, संवहनीय विकास और आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करना।

लक्ष्य

वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा के माध्यम से पारिस्थितिक सुरक्षा, बेहतर उत्पादकता, आजीविका संवर्धन और वन संसाधनों के संवहनीय उपयोग हेतु वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकियों को सृजित, उन्नत और प्रसारित करना।

2 प्रशासन निदेशालय

प्रशासन निदेशालय परिषद् के बजट संबंधित मामलों, भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय हेतु वस्तुओं एवं सेवाओं की अधिप्राप्ति तथा पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली के सम्मुख प्रस्तुत करने हेतु परिषद् की मांग एवं व्यय का संकलन संबंधित मामलों को देखता है। निदेशालय तीन प्रशासनिक प्रभागों यथा सामान्य प्रशासन प्रभाग एवं वित्त जिसके प्रमुख सहायक महानिदेशक (प्रशासन) होते हैं, सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग तथा वानिकी सांख्यिकी प्रभाग का संचालन करता है।

प्रशासनिक कार्य को मुख्य रूप से 7 अनुभागों में विभाजित किया गया है यथा आहरण एवं संवितरण, बजट, भंडार अनुभाग, सामान्य प्रशासन एवं निर्माण कार्य, अधिप्राप्ति, वाहनों का रख–रखाव तथा वन विज्ञान भवन, नई दिल्ली का पर्यवेक्षण।

सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग

भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय में सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग अनुसंधान, प्रशासनिक और अन्य गतिविधियों को सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भा.वा.अ.शि.प. सूचना संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रहा है तथा उपयोगकर्ताओं की संतुष्टि हेतु उत्तरोत्तर 24X7 सेवाएं प्रदान कर रहा है।

अ. होम पेज पर आईसीएफआरई के सोशल मीडिया को अंतः स्थापित करके आईसीएफआरई वेबसाइट को फिर से अभिकल्पित और पुनर्विकसित किया गया

ब. **मौजूदा भा.वा.अ.शि.प. भर्ती पोर्टल का नया स्वरूप और उसका विकास:** भर्ती पोर्टल को संशोधित और पुनर्विकसित किया गया। पोर्टल को लाइव करने से पहले इसका सुरक्षा ऑडिट किया गया।

ब. **भा.वा.अ.शि.प. के पेंशनभोगियों के पोर्टल का विकास:** भा.वा.अ.शि.प. पेंशनभोगियों की पेंशन तैयार करने और भा.वा.अ.शि.प. को पेंशन का विवरण प्रदान करने के लिए एक वेब और मोबाइल एप्लिकेशन (भा.वा.अ.शि.प. पेंशन पोर्टल) के विकास का काम पूरा हो गया है।

3. **सॉफ्टवेयर अनुप्रयोगों/वेबसाइटों का अनुरक्षण:** लगभग 6 वेबसाइटें/डाटाबेस/सीएमएस/अनुप्रयोग जिनमें भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों के अनुप्रयोग और वेबसाइटें भी शामिल हैं और लाइव सर्वर पर हैं, का भी अनुरक्षण किया जा रहा है।

4. **भा.वा.अ.शि.प. की वेबसाइट का अद्यतनीकरण** (http://icfre.gov.in): भा.वा.अ.शि.प. की वेबसाइट को तत्काल अद्यतित किया जाता है। 2021–22 के दौरान लगभग 1330 बार अद्यतन किए गए।

5. **सोशल मीडिया:** भा.वा.अ.शि.प. के ट्विटर, फेसबुक, इंस्टाग्राम, कू, यूट्यूब, फ़्लिकर खाते संचालन में हैं और इनके लिंक भा.वा.अ.शि.प. वेबसाइट के होम पेज पर उपलब्ध कराए गए हैं।

5. **ई–ऑफिस:** भा.वा.अ.शि.प. और इसके संस्थानों में ई–ऑफिस के कार्यान्वयन के प्रयास जारी हैं।

10. **लैन का अनुरक्षण:** भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय, नौ संस्थानों और तीन केंद्रों में मौजूदा और उन्नत हार्डवेयर/ सॉफ्टवेयर के संचालन और अनुरक्षण (ओ एंड एम) का कार्य किया जा रहा है।

राष्ट्रीय ज्ञान नेटवर्क (एनकेएन) संयोजकता

भा.वा.अ.शि.प. के 12 स्थानों को एनकेएन संयोजकता प्रदान की गई है। भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय में राष्ट्रीय ज्ञान नेटवर्क (एनकेएन) संयोजकता उपलब्धता 99% से अधिक है।

वानिकी सांख्यिकी प्रभाग

वानिकी सांख्यिकी प्रभाग, प्रशासन निदेशालय के अन्तर्गत आता है, जिसका उद्देश्य वानिकी डाटा का मूल्यांकन तथा विश्लेषण करना है।

3 अनुसंधान निदेशालय

अनुसंधान निदेशालय के प्रमुख उप महानिदेशक (अनुसंधान) होते हैं और दो सहायक महानिदेशक (अनुसंधान योजना), सहायक महानिदेशक (अनुश्रवण एवं मूल्यांकन) और अन्य वैज्ञानिक उनकी सहायता करते हैं। निदेशालय सुनिश्चित करता है कि भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों द्वारा निष्पादित सभी अनुसंधान परियोजनाएं आवश्यकता आधारित और क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान समस्या को संबोधित करने वाली हों। अनुसंधान की समस्याओं का समाधान करने हेतु समग्र दृष्टिकोण और कार्य के दोहराव से बचने के लिए, भा.वा.अ.शि.प. ने कुछ उभरते विषयों और महत्वपूर्ण वानिकी प्रजातियों सहित एक अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (ए.आई.सी.आर.पी.एस.) की शुरुआत की है।

अनुसंधान योजना प्रभाग

अनुसंधान सलाहकार समूहः वर्ष 2021–22 में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के सभी संस्थानों के लिए अनुसंधान सलाहकार समूह की बैठकों का कार्यक्रम तैयार करने के उपरान्त 15 सितम्बर 2021 से 8 अक्टूबर 2021 के बीच संस्थानों के साथ समन्वयन स्थापित कर बैठकों का आयोजन किया गया।

अनुसंधान नीति समितिः 22 वीं अनुसंधान नीति समिति की बैठक दिनांक 23 फरवरी से 25 फरवरी 2022 को आयोजित की गई, जिसमें भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद की संस्थानों द्वारा प्रस्तुत अनुसंधान परियोजनाओ में 50 नए अनुसंधान परियोजनाओं, 80 पूर्व से चल रही परियोजनाएं एवं 41 पूर्ण हो चुकी परियोजनाओं को महानिदेशक भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद द्वारा अनुमोदित किया गया।

राष्ट्रीय बांस मिशन : बांस तकनीकी सहायता समूह–भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद (BTSG-ICFRE) के तहत वर्ष 2021–2022 के दौरान नर्सरी की स्थापना, डेमो वृक्षारोपण, प्राथमिक प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना, क्षमता निर्माण, सामग्री हस्तांतरण, गुणन, मूल्य श्रृंखला और बांस आधारित अनुसंधान परियोजनाएं कार्यान्वित की गई हैं।

वन उत्पादकता संस्थान रांची द्वारा बांस सामान्य सुविधा केंद्र, अगरबत्ती की स्टिक बनाना एवं परिरक्षण प्लांट (Bamboo Common Facility Centre, Incense Stick Making and Preservation Plant) की ईकाइयों की स्थापना का कार्य चल रहा हैं।

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान जोरहाट के केंद्र एफ.आर.सी–बी.आर. आइजॉल में बांस हस्तशिल्प और आभूषण की इकाई स्थापित की जा रही है और साथ ही Bamboo Shoot Processing की एक इकाई की स्थापना की गई एवं स्थानीय समुदाय के लिए बांस के विभिन्न मूल्य वर्धित उत्पाद बनाने के लिए व्यावहारिक प्रदर्शन व प्रशिक्षण का आयोजन समय–समय पर किये जा रहे हैं।

परियोजनाः "Estimation of economic losses in real term per hectare basis due to Forest Fire in Uttarakhand and Madhya Pradesh" का कार्यान्वयनः राष्ट्रीय प्राधिकरण कैम्पा ने उपरोक्त परियोजना को 02 वर्ष की अवधि के लिए रुपये 378.84 लाख की लागत से अनुमोदित किया। इस परियोजना का समन्वय भा.वा.अ.शि.प. द्वारा किया जा रहा है। सितम्बर 2022 माह में पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली को इस परियोजना की ड्राफ्ट रिपोर्ट अनुमोदनार्थ प्रेषित की गई है।

भा.वा.अ.शि.प. द्वारा स्कीम "Strengthening Forestry Research for Ecological sustainability and Productivity Enhancement" का संचालन किया जा रहा है जो कि राष्ट्रीय प्राधिकरण कैम्पा द्वारा वित्तपोषित है। यह स्कीम रु. 313.67 करोड़ की है जिसमें छः घटक शामिल हैं। योजना का समन्वयन भा.वा.अ.शि.प. निदेशालयों, भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों, 20 गैर–भा.वा.अ.शि.प. एवं राष्ट्रीय प्राधिकरण कैम्पा के साथ मिलकर अनुसंधान योजना प्रभाग द्वारा किया जाता है।

4 विस्तार निदेशालय

विस्तार निदेशालय, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के संस्थानों और केंद्रों की विभिन्न तरह की विस्तार गतिविधियों का समन्वय और विस्तार कार्यनीतियों का विकास करता है। यह पर्यावरण प्रबंधन के क्षेत्र में भी सक्रिय भूमिका निभाता है और विभिन्न संस्थानों को पर्यावरण प्रबंधन से जुड़ी परामर्शी सेवाएं प्रदान करता है। निदेशालय अपने दो प्रभागों, मीडिया एवं विस्तार प्रभाग तथा पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग की मदद से नियत लक्ष्य समूहों, राज्य वन विभागों, उद्योंगों, शिल्पकारों आदि के लिए उपयुक्त मॉडलों सहित प्रौद्योगिकी पैकेज हस्तांतरित करने हेतु प्रयासरत रहता है।

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार गतिविधियों का समन्वय एवं मूल्यांकन करता है। इसके साथ ही प्रभाग द्वारा अनुश्रवण एवं योजना का कार्य भी किया जाता है। परिषद् का वार्षिक प्रतिवेदन एवं इसका हिंदी अनुवाद, मासिक न्यूजलेटर, मासिक वानिकी समाचार, त्रैमासिक राजभाषा रिपोर्ट, मासिक मॉनिटरन, वार्षिक राजभाषा पत्रिका तरूचिंतन तथा अन्य प्रकाशनों का कार्य भी प्रभाग द्वारा किया जाता है। यह प्रभाग राजभाषा से संबंधित गतिविधियों यथा राजभाषा क्रियान्वयन, हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन एवं राजभाषा हिंदी से जुड़ी विभिन्न रिपोर्टों का संकलन एवं संपादन का कार्य भी करता है।

विस्तार गतिविधियों के अंतर्गत वन विज्ञान केंद्र, प्रदर्शन ग्राम, वृक्ष उत्पादक मेलों का आयोजन, किसान मेला, प्रकृति, वन विज्ञान केंद्रों की कृषि विज्ञान केंद्रों के साथ संयोजकता, आदि कार्य किये जाते हैं।

आजादी का अमृत महोत्सव

भा.वा.अ.शि.प. के सभी संस्थानों द्वारा वन उत्पादकता, कृषि वानिकी, मरुस्थलीकरण प्रतिरोध, भारत में वानिकी, कृंतकीय वानिकी, तकनीकी विकास, वनोत्पादों द्वारा ग्रामीण जीविकोपार्जन, पर्यावरण जागरूकता एवं कौशल विकास जैसे विभिन्न विषयों पर कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं।

सोशल मीडिया

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.) अब सोशल मीडिया पर भी उपलब्ध है। विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफार्म यथा ट्विटर, फेसबुक, कू, फ्लिकर, इन्स्टाग्राम, यूट्यूब आदि पर परिषद् का अकाउंट ICFRE India के नाम से संचालित है।

राजभाषा गतिविधियों का आयोजन

हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् में मीडिया एवं विस्तार प्रभाग द्वारा दिनांक 14 से 28 सितम्बर 2022 तक हिन्दी पखवाड़ा आयोजित किया गया। दिनांक 28 सितम्बर 2022 को भा.वा.अ.शि.प. के सभागार में हिन्दी पखवाड़े के समापन समारोह का आयोजन किया गया। इस साल कुल 9 प्रतियोगिताओं यथा, टिप्पण लेखन, कंप्यूटर में हिन्दी टाइपिंग, निबंध, अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद, वाद–विवाद, राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी (क्विज), शब्द संधान, अंत्याक्षरी एवं स्वरचित हिन्दी काव्यपाठ का आयोजन किया गया जिसमें 102 कार्मिकों ने प्रतिभाग किया। भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा पुरस्कारों के अंतर्गत 'क' क्षेत्र स्थित वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून को तथा 'ग' क्षेत्र स्थित वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट को हिन्दी कार्यान्वयन में उत्कृष्ट कार्य के लिए वर्ष 2021–22 का राजभाषा पुरस्कार दिया गया। वर्ष 2021–22 के दौरान अपने शासकीय कार्यों में हिन्दी क्रियान्वयन में समग्र प्रदर्शन

हेतु मुख्यालय के दस कार्मिकों को भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार दिया गया।

हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह के दौरान महानिदेशक महोदय का सम्बोधन

प्रकृति कार्यक्रम

यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके तहत भा.वा.अ.शि.प. के सभी संस्थानों में वैज्ञानिकों और विद्यार्थियों के बीच ज्ञान का आदान–प्रदान किया जाता है। इस कार्यक्रम के माध्यम से केंद्रीय विद्यालयों, जवाहर नवोदय विद्यालयों और अन्य स्कूलों एवं कॉलेजों के विद्यार्थियों को संवेदित/शिक्षित किया जा रहा है।

प्रकाशन

वर्ष 2022 के दौरान भा.वा.अ.शि.प वार्षिक प्रतिवेदन 2021–22 का संकलन, संपादन एवं मुद्रण किया गया। इसके अलावा भा.वा.अ.शि.प. न्यूजलैटर एवं वानिकी समाचार तथा राजभाषा की वार्षिक पत्रिका तरूचिंतन का संकलन, संपादन एवं प्रकाशन् किया गया। इसके साथ ही 43 पुस्तकें, 88 ब्रोशर/पैम्फलेट, 114 लोकप्रिय लेख, पुस्तकों में 92 अध्याय, अंतर्राष्ट्रीय जर्नलों में 153 शोध पत्र और राष्ट्रीय जर्नलों में 235 शोध पत्र प्रकाशित किए गए।

पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग, विस्तार निदेशालय, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून द्वारा वर्ष 2021–22 के दौरान पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं से संबंधित 13 परियोजनाओं के तहत वैज्ञानिक परामर्श/सेवाएं प्रदान की गई। उपर्युक्त सेवाएं देश में विभिन्न हितधारकों जैसे पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार, कर्नाटक सरकार, राज्य वन विभाग, छत्तीसगढ़ सरकार, एनटीपीसी लिमिटेड, नोएडा, कोल इण्डिया लिमिटेड, कोलकाता, वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड, महाराष्ट्र, जे एस डब्ल्यू इनर्जी लिमिटेड, एन. एम. डी. सी., बछेली कॉम्पलैक्स, उड़ीसा वन विभाग इत्यादि को प्रदान की गई।

प्रभाग में चल रही विभिन्न परामर्श/परियोजनाओं के अन्तर्गत 08 परामर्श परियोजनाओं की अध्ययन रिपोर्ट संबंधित परियोजना प्रस्तावक को जमा की गई। इसके अतिरिक्त 05 लौह अयस्क खानों के लिए पुनग्रहण और पुनर्वास योजना के अन्तर्गत वर्ष 2021–22 में संबंधित रिपोर्ट केन्द्रीय अधिकार प्राप्त समिति को प्रस्तुत की गई। इनके अलावा एक्सटेंडेड रिच ड्रिलिंग (ई. आर. डी.) का ज़मीन की ऊपरी सतह पर वनवनस्पति विविधता पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित अध्ययन रिपोर्ट, डायरेक्टर जनरल ऑफ हाईड्रोकार्बन, नोएडा को प्रस्तुत की गई। प्रभाग के द्वारा केन्द्रीय खान योजना एवं डिजाइन संस्थान (सी. एम. पी. डी. आई.) के अधिकारियों को वन अनुसंधान संस्थान के सहयोग से 04 दिनों के लिये कोयला खदानों से संबंधित परिस्थितिकी व जैवविविधता की महत्ता से संबंधित ट्रेनिंग दी गई।

पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग, विस्तार निदेशालय द्वारा परामर्शी परियोजनाओं में सेवाओं के तहत अर्जित धनराशि के अन्तर्गत रु0 3.12 करोड़ की धनराशि राजस्व के रूप में वर्ष 2021–22 के दौरान भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के राजस्व खाते में जमा की गई।

5 शिक्षा निदेशालय

शिक्षा निदेशालय मुख्य रूप से वानिकी शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों में उच्च शैक्षणिक मानकों के लिए देश में वानिकी शिक्षा को बढ़ावा देने, समन्वय करने और सहायता करने, विभिन्न घरेलू एवं विदेशी प्रशिक्षणों का संचालन एवं समन्वयन कर परिषद में कार्यरत वैज्ञानिकों, तकनीकी, कार्यकारी एवं अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम चलाने, वन, वन्यजीव और पर्यावरण के क्षेत्र में नीति अनुसंधान करने और नीति निर्माताओं के लिए इनपुट प्रदान करने तथा परिषद के तकनीकी संवर्ग के श्रेणी–III कर्मियों और वैज्ञानिकों की भर्ती और पदोन्नति करने के लिए अधिदेशित है।

वन नीति अनुसंधान केंद्र के अन्तर्गत वर्तमान वर्ष 2022 में निम्नलिखित दो अध्ययन पूर्ण कर लिये गए हैं।

1 संयुक्त वन प्रबंधन समितियों (जेएफएम) और पारिस्थितिकी विकास समितियों (ईडीसी) सहित सामुदायिक भागीदारी के संस्थानों का पंचायती राज संस्थानों के साथ संबंध, देश के विभिन्न क्षेत्रों में उनके कामकाज की समीक्षा और सफल मॉडल और कमियों की पहचान। **टी.ई.आर.आई., नई दिल्ली**

2 कृषि वानिकी में नीतिगत मुद्दे जिनमें बाजार तंत्र, वनोपज की क्षेत्रीय उपलब्धता, वन उपज का पारगमन, एनडीसी लक्ष्यों के साथ जुड़ाव, प्रजातियों की पसंद और उपयोग के पहलू शामिल हैं।

भारतीय राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ लिमिटेड, नोएडा

भा.वा.अ.शि.प. आउटस्टैंडिग एम्प्लाई अवार्ड निदेशालय द्वारा परिषद् के अधिकारियों एवं कार्मिकों की उत्कृष्ट सेवाओं को पुरस्कृत करने हेतु भा.वा.अ.शि.प. पुरस्कार की व्यवस्था की गई है।

इसके अन्तर्गत वर्ष 2021 के लिए निम्नलिखत श्रेणियों के अर्न्तगत, गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में निम्नलिखित अधिकारियों को पुरस्कृत किया गया था।

1. **आई.सी.एफ.आर.ई. लाइफटाइम मैरिटोरियस सर्विस अवॉर्ड**: यह पुरस्कार, भारतीय वानिकी अनुसंधान संस्थान एवं शिक्षा परिषद् तथा इसके संस्थानों में सेवारत कार्मिक को उनके कार्यकाल में किए गए विशिष्ट तथा सराहनीय कार्यों के लिए प्रदान किया जाता है। यह पुरस्कार निम्नलिखित अधिकारियों को प्रदान किया गया : अधिकारी का नाम तथा पदनामः श्री करतार सिंह, वन परिक्षेत्राधिकारी, हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला। डॉ. के. टी. चन्द्रशेखर, मुख्य तकनीकी अधिकारी, काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलूरू।

इसके अतिरिक्त वर्ष 2022 के लिए निम्नलिखत दो श्रेणियों के अर्न्तगत, निम्न अधिकारियों को पुरस्कृत किया गया था।

2. **आई.सी.एफ.आर.ई. आउटस्टैंडिंग एम्प्लाई अवॉर्ड** : यह पुरस्कार, पुरस्कार के वर्ष से पाँच कैलण्डर वर्ष पूर्व तक किसी कार्मिक द्वारा किए गए उत्कृष्ट योगदान के लिए प्रदान किया जाता है।

श्री संजीव कुमार सचदेवा, सहायक, प्रशासन निदेशालय, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून।

3. **आई.सी.एफ.आर.ई. लाइफटाइम मैरिटोरियस सर्विस अवॉर्ड**: यह पुरस्कार, भारतीय वानिकी अनुसंधान संस्थान एवं शिक्षा परिषद् तथा इसके संस्थानों में सेवारत कार्मिक को उनके कार्यकाल में किए गए विशिष्ट तथा सराहनीय कार्यों के लिए प्रदान किया जाता है। यह पुरस्कार निम्नलिखित अधिकारी को प्रदान किया गया :

श्री रमाकान्त मिश्र, मुख्य तकनीकी अधिकारी, विस्तार निदेशालय, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून।

मानव संसाधन विकास योजना

मानव संसाधन विकास योजना के अर्न्तगत वर्तमान वर्ष 2022 के दौरान 14 प्रशिक्षण आयोजित किए गए।

6 निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग)

निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों से वानिकी अनुसंधान पर सहयोग हेतु संपर्क एवं समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर करने, भा.वा.अ.शि.प. में क्षेत्रवार विशेषज्ञों की पहचान करने तथा भावी निधिकरण अभिकरणों के साथ विषय और थ्रस्ट एरिया आधारित परियोजनाओं का निर्माण और कार्यान्वयन समन्वय करने, बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित मुद्दों पर कार्यशाला, संगोष्ठी और सम्मेलन जैसे कार्यक्रमों को संचालित करने हेतु उत्तरदायी है।

जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग

1. **पारितंत्र सेवाएं सुधार परियोजना के अंतर्गत निम्न कार्य किए गएः**

   (i) वन कार्बन स्टॉक मापन एवं निगरानीः क्षमता विकास के अंतर्गत मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्यों के वन विभागों के अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए "वन कार्बन स्टॉक का मापन" विषय पर पाँच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गए। पहला प्रशिक्षण कार्यक्रम मध्य प्रदेश वन विभाग के लिए दिनांक 19 से 23 सितम्बर, 2022 तक तथा दूसरा प्रशिक्षण कार्यक्रम छत्तीसगढ़ वन विभाग के लिए दिनांक 26 से 30 सितम्बर, 2022 तक आयोजित किया गया।

   (ii) भू–क्षरण व मरुस्थलीकरण कम करने हेतु एकीकृत सतत् भूमि एवं पारितंत्र प्रबंधन प्रणालियों के उन्नयन के लिए निम्न स्लेम प्रणालियों का उन्नयन किया गयाः

- **केंचुआ खाद यूनिटः** एकीकृत कृषि विकास पर स्लेम की सर्वोत्तम प्रणाली के उन्नयन के तहत परियोजना क्षेत्रों के गाँवों में केंचुआ खाद बनाने हेतु वर्मीबेड यूनिट्स की स्थापना की गयी। सभी परियोजना गाँवों में लाभार्थियों को केंचुआ खाद यूनिट का वितरण किया गया, जिसके अंतर्गत वर्मीबेड्स और केंचुए वितरित कर लाभार्थियों को केंचुआ खाद बनाने की विधियों के बारे में विस्तार से बताया गया।
- **सब्जी बीजों का वितरणः** परियोजना के अंतर्गत सब्जी के बीजों का वितरण सभी परियोजना क्षेत्रों में किया गया जिसका उद्देश्य हितग्राहियों को खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करना, आजीविका के स्रोत बढ़ाना तथा भू–उपयोग को बढ़ाकर जल व मिटटी का सरंक्षण कर स्थानीय पारितंत्र को मजबूत करना है।
- **उन्नत चूल्हाः** मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के गाँवों में उन्नत चूल्हों का वितरण किया गया। इन चूल्हों के वितरण व उपयोग का मुख्य उद्देश्य लकड़ी के न्यूनतम उपयोग से वनों की कटाई को रोकना, परम्परागत चूल्हों से निकलने वाले धुएं के उत्सर्जन को कमकर वायु प्रदुषण को नियंत्रित करना तथा धुएं से होने वाली विभिन्न बीमारियों से महिलाओं को बचाना, आदि सम्मलित हैं।
- **वाड़ी विकासः** परियोजना क्षेत्रों में वाड़ी विकास के तहत फलों के पौधे (उन्नत किस्म के अमरुद, आम, आँवला, सीताफल, मुनगा व नींबू) वितरित किये गए व इन पौधों को सफलता पूर्वक जुलाई–अगस्त के महीने में लगाए गये। इन फलदार पौधों को वाड़ी में लगाने का प्रमुख उद्देश्य वृक्ष आधारित खेती का विकास करना है जिससे कि बहुफसलीय पैदावार से हितग्राहियों की आय में वृद्धि हो और स्थानीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा सुदृढ़ हो।
- **जैविक कीटनाशक और जैविक उर्वरकः** जैविक कीटनाशक और जैव उर्वरक को बढ़ावा देने हेतु

परियोजना गाँवों में जैविक कीटनाशक और जैविक उर्वरक बनाये जा रहे हैं। इस कार्य को करने के लिए हितग्राहियों को ओपन–टॉप ड्रम्स वितरित किये जा रहे हैं तथा उन्हें विभिन्न तरह के जैविक–कीटनाशक व जैविक–उर्वरक बनाने हेतु प्रेरित किया जा रहा है।

2. **विश्व मरुस्थलीकरण और सूखा दिवस** के उपलक्ष्य में एक संगोष्ठी का आयोजन दिनांक 17 जून 2022 को किया गया। संगोष्ठी का मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालय के छात्रों, शोधकर्ताओं और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधकों सहित युवाओं के बीच जागरूकता पैदा करना था। संगोष्ठी के दौरान ''कृषि क्षेत्र में सूखा प्रबंधनः केस स्टडीज", "उत्कृष्टता केंद्र की स्थापना और कामकाज" और "भारत के मरुस्थलीकरण और भूमि क्षरण की स्थिति का अवलोकन", "निम्नीकृत वनभूमि की बहालीः केस स्टडीज", "भारत में सूखा जोखिम न्यूनीकरण एवं प्रबंधन रणनीतियाँ" और "सूखा निगरानी और पूर्व चेतावनी" प्रणाली पर प्रस्तुतिकरण किया गया।

3. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की कैम्पा वित्तपोषित स्कीम के कम्पोनेन्ट Capacity Building of State Forest Departments for Developing State REDD+ Action Plan (CAMPA) के तहत गोवा तथा तेलंगाना राज्यों के राज्य वन विभागों की क्षमता विकास हेतु कार्यशालाएँ क्रमशः 23–24 अगस्त, 2022 तथा 04–07 सितम्बर, 2022 को आयोजित की गई। इन कार्यशालाओं में कुल 40 प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया।

4. निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) के बाह्य परियोजना प्रभाग द्वारा वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एंव प्रसार के क्षेत्र में आपसी सहयोग हेतु निम्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ आशय पत्र/समझौता–ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किये गये।

अ. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून एवं भारतीय सुदूर संवेदन संस्थान (आई.आई.आर.एस.–इसरो) देहरादून के मध्य सहप्रसरण प्रणाली सिस्टम के माध्यम से वन कार्बन एक्सचेंज अध्ययन के क्षेत्र में आपसी सहयोग हेतु दिनांक 12 अगस्त 2022 को समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये गये।

ब. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून एवं राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एन.सी.डी.सी.) नई दिल्ली के मध्य एन.टी.एफ.पी. और संबधद्ध क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं पर आपसी सहयोग हेतु दिनाँक 06 मई 2022 को समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये गये।

जैव– उर्वरक का निर्माण

7 भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् में हिंदी दिवस समारोह का प्रारंभ केंद्रीय रूप से 14 सितंबर 2022 को माननीय केंद्रीय गृहमंत्री जी की घोषणा के साथ पंडित दीन दयाल उपाध्याय स्टेडियम, सूरत में आयोजित किया गया। इस अवसर पर भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् से महानिदेशक महोदय, श्री अरूण सिंह रावत, भा. व.से., समस्त उपमहानिदेशक, सहायक महानिदेशक, अन्य वरिष्ठ अधिकारी एवं कार्मिक लाइव वेबकॉस्ट के माध्यम से इस कार्यक्रम के साक्षी बने।

हिन्दी दिवस समारोह के अवसर पर महानिदेशक महोदय द्वारा दीप प्रज्वलन

इसी क्रम में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् में भी दिनांक 14 सितंबर 2022 को अपराह्न 04.00 बजे से एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस आयोजन के साथ परिषद् में हिंदी पखवाड़े की शुरूआत हुई। अरुण सिंह रावत, महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प. ने हिंदी पखवाड़ा के कार्यक्रम की अध्यक्षता की जिसमें भा.वा.अ.शि.प. के समस्त अधिकारियों, वैज्ञानिकों, एवं कर्मचारियों ने हिस्सा लिया। इस अवसर पर हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री सुभाष पंत को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था। हिंदी साहित्य में उनके योगदान के लिए महानिदेशक महोदय ने श्री पंत को शॉल एवं स्मृति चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया।

अपने संबोधन में श्री पंत ने कहा कि भाषा हमारे पूर्वजों की सबसे समृद्ध विरासत है। उन्होंनें कहा कि सभी भाषाएं समृद्ध हैं और अगर आप अन्य भाषाओं से प्यार करेंगे तो आपकी भाषा को भी सम्मान मिलेगा। साहित्य की ताकत के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा कि विश्व की सभी महान

मुख्य अतिथि श्री सुभाष पंत का संबोधन

शख्सियतों ने साहित्यकार बनना चाहा क्योंकि साहित्य आपके अंदर संवेदना पैदा करता है और बिना संवेदना के मनुष्य पशु समान है। उन्होंने कहा कि एक सभ्य समाज के लिए साहित्य और वृक्ष परम् आवश्यक हैं।

महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. ने इस अवसर पर परिषद् तथा इसके संस्थानों में हिंदी के बढ़ते प्रयोग के बारे में जानकारी दी। उन्होंने बताया कि विगत वर्षों में परिषद एवं संस्थानों के सरकारी काम–काज में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि

हुई है। उन्होंने कहा कि खासतौर पर अहिंदी भाषी प्रदेशों में स्थित संस्थान हिंदी के प्रयोग में बहुत अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं तथा उन्होंने राजभाषा लक्ष्य भी प्राप्त कर लिए हैं।

डॉ. गीता जोशी स.म.नि. (मी. व वि.) ने विशिष्ट अतिथियों का स्वागत किया

हिंदी पखवाड़े का समापन समारोह दिनांक 28 सितम्बर 2022 को आयोजित किया गया। इस अवसर पर श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून मुख्य अतिथि थे। विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री एस. डी. शर्मा, भा.व.से. (सेवानिवृत्त) एव श्री विजय बहादुर थापा को आमंत्रित किया गया था।

महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. श्री अरुण सिंह रावत ने पखवाड़े के दौरान आयोजित हुई प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए और कहा कि 'क' क्षेत्र' में होने के कारण राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन में हमारा दायित्व केवल भारत सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति ही नहीं है बल्कि यह हमारा नैतिक दायित्व भी है कि हम हिन्दी में कार्य करें। इस अवसर पर महानिदेशक महोदय ने श्री रमाकांत मिश्र, मुख्य तकनीकी अधिकारी, मीडिया एवं विस्तार प्रभाग को हिंदी के प्रति उनकी सेवाओं के लिए विशेष पुरस्कार से सम्मानित किया।

इसके साथ ही उन्होनें भा.वा.अ.शि.प. के 'क' एवं 'ग' क्षेत्रों में स्थित संस्थानों को भी हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने हेतु राजभाषा पुरस्कार प्रदान किए। 'क' क्षेत्र स्थित संस्थानों में इस साल यह पुरस्कार वन अनुसंधान संस्थान को दिया गया। संस्थान के कुलसचिव श्री एस.के. थॉमस ने मंच पर

श्री रमाकांत मिश्र, (मु.त.अ.) को सम्मानित करते हुए महानिदेशक महोदय

आकर पुरस्कार ग्रहण किया। 'ग' क्षेत्रों में स्थित संस्थानों में यह पुरस्कार वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट को प्रदान किया गया।

डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक (विस्तार) ने स्वागत भाषण के दौरान राजभाषा हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इस वर्ष हिन्दी पखवाड़े के दौरान कुल 9 प्रतियोगिताएं यथा, टिप्पण लेखन, शब्द संधान, निबंध, अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद, वाद–विवाद, राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी, कम्प्यूटर पर हिंदी टंकण, अंत्याक्षरी एवं स्वरचित हिन्दी काव्यपाठ आयोजित की गईं, जिनमें कुल 102 प्रतिभागियों ने अत्यंत उत्साह से भाग लिया। उन्होंने सूचित किया कि भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा पुरस्कारों के अंतर्गत वर्ष 2021–22 के दौरान अपने शासकीय कार्यों में हिन्दी क्रियान्वयन में समग्र प्रदर्शन हेतु भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय के दस कार्मिकों को भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार दिया गया।

कार्यक्रम के अंत में सुर संगम का आयोजन किया गया जिसमें श्री एस. डी. शर्मा, भा.व.से. (सेवानिवृत्त), श्री विजय

बहादुर थापा, श्रीमती सीमा राणा, श्री संजीव खुगशाल, श्री अरविंद जौहरी एवं श्री गिरीश खंडूड़ी ने गायन किया। श्री विजय बहादुर थापा ने हारमोनियम पर तथा श्री रमेश कुमार ने तबलावादन पर सुर संगम के इस कार्यक्रम में समां बांध दिया।

विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं के नामों की घोषणा श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) द्वारा की गई। कार्यक्रम का समापन डॉ. गीता जोशी, सहायक महानिदेशक, (मीडिया एवं विस्तार) द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव के साथ हुआ। समापन समारोह में श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., श्रीमती कंचन देवी उप महानिदेशक (शिक्षा), श्री आर. के. डोगरा, उप महानिदेशक (प्रशासन), डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक (विस्तार), डॉ.

सुर–संगम का आयोजन

गीता जोशी, सहायक महानिदेशक, (मीडिया एवं विस्तार), विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री एस. डी. शर्मा, भा.व.से. (सेवानिवृत्त), श्री विजय बहादुर थापा, श्री दीपक मिश्रा, सचिव, भा.वा.अ.शि.प., श्री एस के थॉमस, कुलसचिव, वन अनुसंधान संस्थान तथा भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय के अधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित रहे।

बैठकें

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् देहरादून की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 24 मार्च 2022 को प्रथम, 20 जून 2022 को द्वितीय तथा 28 सितंबर 2022 को तीसरी बैठक का आयोजन किया गया। इसमें राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग की समीक्षा और प्रयोग को बढ़ाने से सम्बंधित महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा की गई।

कार्यशालाएं

परिषद् में प्रत्येक वर्ष राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने तथा कर्मिकों को राजभाषा अधिनियम की जानकारी तथा हिंदी के प्रयोग के विषय में जानकारी बढ़ाने के उद्देश्य से हिंदी प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है।

वर्ष के दौरान 16 मार्च 2022 को प्रथम प्रशिक्षण कार्यशाला, 28 जून 2022 को द्वितीय, 01 सितंबर 2022 को तृतीय और 10 नवंबर 2022 को चतुर्थ प्रशिक्षण कार्यशाला

डॉ. गीता जोशी स.म.नि. (मी. व वि.) द्वारा धन्यवाद ज्ञापन

का आयोजन किया गया। इनमें सरकारी काम काज में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए सुगम एवं व्यावहारिक उपायों पर सुझाव दिए गए जिसमें कुल 5 अधिकारियों एवं 53 कर्मचारियों ने हिस्सा लिया। इन कार्यशालाओं में प्रतिभागियों को अधिकतम कार्यालीन कार्यों को राजभाषा हिंदी में करने हेतु तकनीकों के प्रयोग के बारे में जानकारी दी गई। इसके साथ ही कार्याशालाओं में प्रतिभागियों को अनुवाद के बारे में भी जानकारी दी गई। अपनी प्रतिपुष्टि में लगभग सभी कर्मिकों ने कार्यशालाओं को अति उपयोगी व ज्ञानवर्धक बताया।

8 शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में राजभाषा गतिविधियाँ

हिन्दी सप्ताह – 2022 का आयोजन

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में 14 से 20 सितंबर, 2022 को हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया। दिनांक 14 सितंबर 2022 को 'हिन्दी दिवस' के दिन हिन्दी सप्ताह 2022 का शुभारंभ हुआ। इस अवसर पर संस्थान के

'हिंदी दिवस' के दिन डॉ. तरुण कान्त, स. सम. (शोध) द्वारा दिलवाई गयी राजभाषा प्रतिज्ञा का दृश्य

समूह समन्वयक (शोध) एवं वैज्ञानिक–'जी' डॉ. तरुण कान्त ने सभी को राजभाषा प्रतिज्ञा दिलवाई एवं संस्थान निदेशक श्री माना राम बालोच ने 'हिंदी दिवस' के सम्बन्ध में जारी अपील को पढ़ा। तत्पश्चात संस्थान के कनिष्ठ अनुवादक, श्री अजय वशिष्ठ ने माननीय गृह मंत्री, भारत सरकार के हिंदी दिवस पर दिए गए सन्देश को पढ़ा तथा हिन्दी सप्ताह के दौरान आयोजित होने वाली प्रतियोगिताओं की जानकारी दी। हिंदी सप्ताह–2022 के दौरान आयोजित हुई प्रतियोगिताओं में संस्थान के कर्मियों ने बढ़ –चढ़ कर भाग लिया ।

हिन्दी सप्ताह–2022 का समापन समारोह दिनांक 20 सितंबर 2022 को आयोजित हुआ जिसमें मुख्य अतिथि श्री ओम प्रकाश भाटिया, कथाकार, विशिष्ट अतिथि श्री सत्यदेव संवितेंद्र, हिंदी तथा मारवाड़ी के कवि एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. कीर्ति माहेश्वरी, सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर रहे। संस्थान निदेशक श्री माना राम बालोच, भा.व.से ने अतिथियों का स्वागत किया तथा मंचासीन अतिथियों एवं पदाधिकारियों द्वारा दीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का समारंभ किया गया।

हिंदी की वार्षिक प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए सहा. निदेशक (राजभाषा)

कार्यक्रम में स्वरचित कविता–पाठ प्रतियोगिता आयोजित हुई जिसमें संस्थान कर्मियों ने अपनी–अपनी कविताएँ प्रस्तुत की।

इस अवसर पर संस्थान के सहा. निदेशक (राजभाषा) श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने हिंदी प्रगति की वर्ष 2021–22 की रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन की स्थिति पर प्रकाश डाला।

इसी क्रम में हिंदी सप्ताह के दौरान आयोजित हुई प्रतियोगिताओं में विजेता रहे प्रतिभागियों को अतिथियों द्वारा प्रमाण–पत्र प्रदान कर उनका उत्साह वर्धन किया गया। संस्थान के समूह समन्वयक (शोध) एवं वैज्ञानिक–'जी' डॉ.

तरुण कान्त ने इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि राजभाषा हिंदी के प्रति आदर एवं जुड़ाव की जरुरत है, साथ ही उन्होंने हिंदी भाषा से जुड़े कई दिलचस्प तथ्यों को साझा किया।

समापन समारोह में सभागार को संबोधित करते हुए संस्थान निदेशक श्री एम.आर. बालोच, भा.व.से.

कार्यक्रम की विशिष्ट अतिथि डॉ. कीर्ति माहेश्वरी ने अपने उद्‌गार में हिंदी भाषा से जुड़े अपने अनुभवों को साझा किया तथा हिंदी के प्रयोग में नवाचार लाने एवं सभी भाषाओं को महत्त्व देते हुए भावी पीढ़ी में हिंदी के प्रति भावनात्मक लगाव की जरुरत बताई।

विशिष्ट अतिथि श्री सत्यदेव संवितेन्द्र ने अपने विचार व्यक्त करते हुए हिंदी भाषा से जुड़ी अपनी मौलिकता एवं नैतिकता के मूल्यों को बनाए रखने का आग्रह किया। साथ ही आपने हिंदी दिवस को हिंदी उत्सव के रूप में मनाए जाने की भावना पर बल दिया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि महोदय श्री ओम प्रकाश भाटिया ने अपने उद्‌बोधन में हमारी शिक्षा पद्धति और प्रगति में हिंदी भाषा के महान योगदान को रेखांकित किया। आपने वर्तमान में शिक्षा पद्धति की कमियों को दूर करने एवं हिंदी को भाषा, विचारों एवं संवेदनाओं की वाहक बनाने की महत्ता को प्रतिपादित किया।

समापन समारोह के अवसर पर संस्थान निदेशक श्री माना राम बालोच ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि हमारी मातृभाषा में कई ऐसे प्राचीन शब्द हैं जिनके पर्याय अन्य भाषा में सुलभ नहीं हैं तथा अपनी भाषा पर हमें गर्व

अतिथियों को सम्मानित करते हुए निदेशक महोदय

करना चाहिए। आपने अपनी प्रांतीय भाषाओँ तथा राजभाषा के महत्व पर प्रकाश डाला साथ ही आपने हाल ही में सूरत, गुजरात में हुए दूसरे 'अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' के अपने अनुभव भी सभी के साथ साझा किये।

कार्यक्रम के अंत में निदेशक महोदय ने मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथियों को स्मृति चिन्ह एवं विस्तार सामग्री भेंट की। कार्यक्रम के दौरान मंच संचालन एवं अंत में आभार–ज्ञापन कनिष्ठ अनुवादक श्री अजय वशिष्ठ ने किया।

माह सितंबर, 2022 में ही दिनांक 26 सितंबर 2022 को संस्थान में नव–नियुक्त 14 कार्मिकों के लिए 'हिन्दी कार्यशाला' का आयोजन किया गया तथा दिनांक 29 सितंबर 2022 को संस्थान की विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक का आयोजन किया गया।

9 वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ

हिंदी पखवाड़ा, 2022

संविधान प्रदत्त उत्तरदायित्वों के निर्वहन तथा राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु प्रत्येक वर्ष की भाँति संस्थान में 14 से 29 सितंबर, 2022 तक हिंदी अनुभाग के सौजन्य से हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस दौरान राजभाषा हिन्दी के प्रति जागरूकता और रुचि बढ़ाने के लिए अधिकारियों और कार्मिकों के लिए हिंदी निबंध, हिन्दी टंकण, प्रारूप एवं टिप्पण लेखन आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

समापन समारोह में पुरस्कार वितरण करते हुए निदेशक महोदया डॉ. रेनू सिंह

पखवाड़े का समापन दिनांक 30 सितंबर, 2022 को पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र वितरण के साथ किया गया। कार्यक्रम में विभिन्न प्रतियोगिताओं के पुरस्कार विजेता प्रतिभागी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का शुभारंभ श्री एस. के. थॉमस, कुलसचिव महोदय का स्वागत भाषण से हुआ। पुरस्कार वितरण के उपरांत निदेशक महोदया डॉ. रेनू सिंह जी ने सभी प्रतिभागियों के उत्साह की सराहना की और उन्हें अपना ज्यादा से ज्यादा कार्य राजभाषा हिन्दी में करने के लिए प्रोत्साहित किया।

इस दौरान वित्तीय वर्ष 2021–22 की अवधि में निरंतर हिन्दी कार्यान्वयन में उत्कृष्ट प्रगति करने वाले अनुसंधान कार्यालयों की श्रेणी में वन पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग एवं वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग तथा प्रशासनिक कार्यालय की श्रेणी में वन अनुसंधान सम विश्वविद्यालय कार्यालय को शील्ड एवं प्रशस्ति पत्र से सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम के अंत में श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) ने सभी का आभार व्यक्त किया।

कार्यशाला में उपस्थित श्री एस. के. थॉमस, कुलसचिव, व.अ.सं. श्री महिमानन्द भट्ट तथा सभी प्रतिभागीगण

कार्यशालाएंः

संस्थान में 2 मार्च 2022 को ''संवैधानिक प्रावधान एवं नियमों/अधिनियमों का कार्यालयीन प्रयोग'' विषय पर एक दिवसीय राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। श्री महिमानंद भट्ट, प्रबंधक राजभाषा (सेवानिवृत्त), केंद्रीय भंडारण निगम, द्वारा उपस्थित प्रतिभागियों को प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

दिनांक 3 जून, 2022 को संस्थान में नवनियुक्त अवर श्रेणी स्तर कर्मचारियों के लिए तिमाही प्रगति रिपोर्ट तथा

हिंदी प्रगति निगरानी पंजिका में उचित प्रविष्टि विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला के दौरान सभी प्रतिभागियों को श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) ने संबोधित किया एवं पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन के माध्यम से व्याख्यान दिया।

राजभाषा हिन्दी के उत्कृष्ट क्रियान्वयन हेतु व.अ.सं. देहरादून को पुरस्कृत किया गया।

दिनांक 2 सितंबर, 2022 को संस्थान में एक दिवसीय राजभाषा हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। विषय विशेषज्ञ के रूप में उपस्थित श्री महिमानंद भट्ट, प्रबंधक राजभाषा (सेवानिवृत्त) ने प्रतिभागियों को प्रशिक्षण प्रदान किया। श्री भट्ट ने प्रतिभागियों को हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन की बारीकियों से अवगत कराते हुए तत्संबंधी अभ्यास कार्य भी संचालित किया।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति बैठकः

राजभाषा कार्यान्वयन में लक्ष्य प्राप्ति को सुनिश्चित करने और लक्ष्यों को बनाए रखने के लिए वन अनुसंधान संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का नियमित आयोजन किया जाता है। समिति की बैठकें क्रमशः 26 मार्च 2022, 16 जून 2022 तथा 30 सितंबर 2022 को आयोजित की गई। बैठक में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित विषयों पर चर्चा की गई।

भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कारः

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद द्वारा वन अनुसंधान संस्थान देहरादून को वर्ष 2021–22 में 'क' क्षेत्र स्थित अधीनस्थ कार्यालयों की श्रेणी के अंतर्गत राजभाषा हिंदी के क्रियान्वयन में उत्कृष्ट कार्य हेतु शील्ड एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकः

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–1) देहरादून की छमाही बैठक 24 जून 2022 को ऑनलाइन आधार पर आयोजित की गई। बैठक के दौरान सदस्य कार्यालयों के हिंदी कार्यान्वयन की छमाही प्रगति प्रतिवेदनों की समीक्षा की गई। संस्थान को वर्ष 2021–22 के दौरान हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया गया।

क्विज (प्रश्नोत्तरी) प्रतियोगिता एवं काव्य सम्मेलन का आयोजनः

संस्थान में ''आजादी का अमृत महोत्सव'' कार्यक्रमों की श्रृंखला के अंतर्गत 23 फरवरी, 2022 को एक क्विज (प्रश्नोत्तरी) प्रतियोगिता तथा 24 फरवरी, 2022 को काव्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। प्रतियोगिता में विभिन्न प्रभागों व अनुभागों के अधिकारिया एवं कार्मिकों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया।

दिनांक 24 फरवरी 2022 को आयोजित काव्य सम्मेलन में आमंत्रित विशिष्ट कवि डॉ. रामविनय सिंह, एसोशिएट प्रोफेसर, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून, श्री सतीश बंसल, वसंत विहार एवं श्री ओ.पी. खरबंदा (अंबर), देहरादून ने अपने काव्यपाठ एवं गायन से उपस्थित श्रोतागणों को मंत्रमुग्ध कर दिया। श्री आर.पी. सिंह, भा.व.से, प्रमुख, वन संवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग की अध्यक्षता में आयोजित काव्य सम्मेलन में संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक, अधिकारी, कार्मिक, शोधार्थी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन सयुक्त रूप से श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा) तथा श्री सुबोध वाजपेयी, पुस्तकालय सूचना सहायक ने किया।

10 हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में राजभाषा गतिविधियाँ

संस्थान द्वारा नियमित रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें आयोजित की गई जिनमें संस्थान की प्रगति की समीक्षा की गई और मुख्यालय से प्राप्त निर्देशों आदि की अनुपालना पर चर्चा की गई। कुछ सामान्य गतिविधियाँ निम्न थी:

- नराकास, शिमला (कार्यालय–2) द्वारा राजभाषा संबंधित बैठक दिनांक 26.07.2021 को आनलॉइन माध्यम से आयोजित की गई, जिसमें संस्थान द्वारा ऑनलाइन माध्यम से बैठक में भाग लिया गया।
- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में राजभाषा गतिविधियों का वर्ष 2022–23 हेतु रोस्टर, हिन्दी के प्रयोग के लिए वार्षिक कार्यक्रम व कार्यालय आदेश भी जारी किए गए।

संस्थान निदेशक द्वारा मुख्य अतिथि का स्वागत

- संस्थान में आयोजित की गई अधिकतर बैठकों/संगोष्ठियों/कार्यशालाओं का संचालन हिन्दी में किया गया।

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा 29 सितंबर 2022 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा दिनाँक 29.09.2022 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें समस्त अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला के प्रारंभ में निदेशक प्रभारी डॉ. संदीप शर्मा ने डॉ. कुँवर दिनेश सिंह (प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष राजकीय महाविद्यालय कोटशेरा शिमला) का स्वागत किया व उन्होंने मुख्य–वक्ता के रुप में "देश में राजभाषा हिन्दी की प्रासंगिकता तथा स्वतंत्र भारत में हिन्दी में कामकाज की अनिवार्यता" पर व्याख्यान प्रस्तुत किया।

हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा दिनांक 14 सितंबर 2022 से 29 सितंबर 2022 तक हिन्दी पखवाड़े का आयोजन धूमधाम से किया गया। हिन्दी पखवाड़े के

मुख्य अतिथि का संबोधन

दौरान सरकारी कार्यों में राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा देने हेतु संस्थान द्वारा कम्प्यूटर पर हिन्दी टंकण, निबंध लेखन, शब्द ज्ञान व हिन्दी व्याकरण प्रतियोगिता, टिप्पण, प्रारूप लेखन, कविता पाठ इत्यादि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। हिंदी पखवाड़ा–2022 के समारोह की अंतिम गतिविधि के रूप में कविता–पाठ प्रतियोगिता एवं पुरस्कार

वितरण समारोह दिनांक 29 सितंबर 2022 को संस्थान के निदेशक (प्रभारी) डॉ. संदीप शर्मा के पर्यवेक्षण में सपंन्न हुआ। इस अवसर पर सर्वप्रथम संस्थान के निजी सचिव श्री दिनेश धीमान द्वारा संस्थान में हिंदी की वर्तमान स्थिति का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया। जिसमें उन्होनें संस्थान की विभिन्न उपलब्धियों यथा–संस्थान में हिन्दी में कार्य

हिन्दी पखवाड़े के दौरान पुरस्कार वितरण

करने की प्रतिशतता, टिप्पण–प्रारूप लेखन का शत–प्रतिशत हिंदी में निष्पादन, संगोष्ठियों व कार्यशालाओं का हिंदी में संचालन, राजभाषा में तकनीकी व प्रौद्योगिकी का सफल प्रयोग इत्यादि पर विस्तारपूर्वक आख्या प्रस्तुत किया।

इसके उपरांत काव्य पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। काव्य पाठ प्रतियोगिता के दौरान समस्त सदस्य मंडल को विशेषतयः युवा वर्ग की स्व–रचित कविताओं का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित की गई प्रतियोगिताओं के विजेताओं को निदेशक महोदय द्वारा पुरस्कार व प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया व पिछले एक वर्ष में हिन्दी में सर्वाधिक व उत्कृष्ट कार्य करने वाले कर्मचारियों को भी पुरस्कार व प्रमाण पत्र देकर

हिन्दी पखवाड़े के दौरान प्रतियोगिता का आयोजन

सम्मानित किया गया।

पुरस्कार वितरण के उपरान्त निदेशक महोदय ने संस्थान में फलफूल रही प्रतियोगिता संस्कृति की सराहना करते हुए विभिन्न प्रतिभागियों को शुभकामना संदेश दिया व हिन्दी पखवाड़े के दौरान समस्त अधिकारियों, कर्मचारियों, प्रतियोगियों एवं हिन्दी प्रकोष्ठ को उनके सहयोग हेतु आभार व्यक्त किया। अपने संबोधन में उन्होंने हिंदी की समसामयिक वस्तुस्थिति की समीक्षा करते हुए कहा कि संस्थान में आज राजभाषा का अप्रतिम उन्नयन संभव हुआ है तथापि इस दिशा में हमारे अविराम प्रयासों में किसी भी प्रकार का अवनयन दृष्टिगोचर नहीं होना चहिए। इसके अतिरिक्त निदेशक महोदय ने समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों को राजभाषा नियमों के अनुसार समस्त कार्य हिन्दी में करने के निर्देश दिए। अंत में श्री दिनेश पॉल, उप–अरण्यपाल व राजभाषा प्रभारी ने सभी अधिकारियों व कर्मचारियों का धन्यवाद प्रकट किया।

11 वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद में राजभाषा गतिविधियाँ

हिन्दी सप्ताह समारोह

वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद में 14–21 सितंबर, 2022 को हिंदी सप्ताह मनाया गया। इस दौरान संस्थान में हिंदी रिक्त स्थानों की पूर्ति करना एवं श्रुतलेख की दो प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। डॉ. पंकज सिंह, वैज्ञानिक–'सी' एवं हिंदी प्रभारी ने हिंदी सप्ताह के दौरान कार्यक्रम का संचालन किया।

इस अवसर पर श्री ई. वेण्कट रेड्डी, भा.व.से., कार्यालय प्रमुख महोदय द्वारा प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार वितरण किया गया। पहली प्रतियोगिता रिक्त स्थानों की पूर्ति करने में श्रीमती एम.बी.एस. भारती, कनिष्ठ लिपिक ने पहला स्थान और श्री. जी. विनय गौड़, तकनीशियन, ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। दूसरी प्रतियोगिता श्रुतलेख में श्री. जी. विनय गौड़, तकनीशियन, ने पहला स्थान, श्रीमती एन. अर्चना, कनिष्ठ लिपिक ने दूसरा स्थान, श्री. जी. मौनिका, तकनीशियन ने तीसरा स्थान प्राप्त किया। कार्यक्रम में आगे बढ़ते हुए पिछले वर्ष में हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु जिन कर्मचारियों ने अपना योगदान दिया उनको प्रशस्ति पत्र से पुरस्कृत किया गया जिसमें तीनों कर्मचारी श्रीमती एन. अर्चना, कनिष्ठ लिपिक, श्री. वरुण सिंह, तकनीशियन और श्री. जी. विनय गौड़, तकनीशियन के द्वारा किये गए कार्यालय वैज्ञानिकी कार्यों के निष्पादन को सराहा गया।

इस अवसर पर श्री ई. वेण्कट रेड्डी, भा.व.से., कार्यालय प्रमुख महोदय ने अपने विचार व्यक्त किये और श्री. प्रवीण एच. चव्हाण, वैज्ञानिक–'जी' ने भी अपने विचारों को व्यक्त किया जिसके पश्चात् डॉ. पंकज सिंह, वैज्ञानिक–'सी', ने सभा गोष्ठी का धन्यवाद ज्ञापन किया।

अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री ई. वेण्कट रेड्डी, भा.व.से., कार्यालय प्रमुख महोदय

प्रतियोगिता पुरस्कार वितरण

12 वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर में राजभाषा गतिविधियाँ

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर राजभाषा के प्रचार–प्रसार के लिये निरंतर प्रयासरत है। संस्थान में नियमित रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति बैठक का आयोजन किया जाता है। सन् 2021–22 के दौरान पहली बैठक 29 जुलाई 2021, दूसरी बैठक 21 दिसंबर 2021 और तीसरी बैठक 28 मार्च 2022 को संस्थान के निदेशक महोदय की अध्यक्षता में हुई जिसमें राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्य शामिल थे।

28 सितंबर 2021 को "हिंदी में टिप्पणी एवं आलेखन" विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के विभिन्न विभागों से 20 अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला के विषय पर विस्तार से चर्चा करने के लिए श्री एस.वीरमणिकंडन, वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, कोयंबत्तूर को आमंत्रित किया गया था। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि हिंदी हमारी राजभाषा है। जिस तरह हम केंद्र सरकार द्वारा दिये गये सभी सुविधाओं का प्रयोग करते हैं उसी तरह केंद्र सरकार के द्वारा बनाए गये राजभाषा के नियमों का पालन करना भी हमारा कर्तव्य बनता है।

टिप्पणी लेखन विषय पर चर्चा करते हुए उन्होंने सामान्य एवं नियमित रूप से प्रयोग में आने वाली टिप्पणियों को दो भागों में बांटकर उनको आसान तरीके से द्विभाषिक रूप में प्रयोग करने की विधि को उदाहरण सहित सभी को समझाया। अंत में श्रीमती पूंगोदै कृष्णन, कनिष्ठ अनुवादक ने सभी को धन्यवाद देते हुए इस कार्यशाला को सम्पन्न किया।

दिनांक 10–11 फरवरी 2022 को दो दिवसीय सारांश हिंदी टंकण प्रशिक्षण का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के विभिन्न विभागों के 20 अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया।

नए तरीके से राजभाषा के प्रयोग को कर्मचारियों तक आसानी से पहुँचाने के संकल्प में 17 जून 2022 को सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिये हिंदी फिल्म **"दसविदानिया"** का प्रदर्शन किया गया।

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर में सितम्बर माह में हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस दौरान विभिन्न प्रतियोगिताएँ जैसे हिन्दी प्रशासनिक शब्द श्रुतलेखन, हिन्दी वाचन और हिंदी निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने उमंग–उत्साह से भाग

हिन्दी कार्यशाला का आयोजन

लिया। 14 सितम्बर 2022 को हिन्दी दिवस समारोह मनाया गया। इस समारोह में संस्थान के निदेशक डॉ. सी. कुञ्ञिकण्णन, समूह समन्वयक डॉ. आर. यशोधा, वैज्ञानिक–'जी', राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष डॉ.ए.सी. सूर्य प्रभा, वैज्ञानिक–'डी', राजभाषा नोडल अधिकारी श्रीमती के. शांति, मुख्य तकनीकी अधिकारी, कनिष्ठ अनुवादक श्रीमती पूंगोदै कृष्णन एवं सभी अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कार्मिकों ने भाग लिया। इस

कार्यक्रम में सर्वप्रथम डॉ.ए.सी. सूर्य प्रभा, वैज्ञानिक–'डी' एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष ने सभी का स्वागत करते हुए कहा कि पिछले 14 वर्षों से हिन्दी दिवस समारोह मनाते आ रहे हैं और भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम निरंतर प्रयास करते आ रहे हैं और उसी के फलस्वरूप 2015–16, 2018–19, 2019–20 और 2020–21 वर्ष में राजभाषा के कार्यान्वयन में प्रगति के लिए संस्थान को भा.वा.अ.शि.प राजभाषा पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके उपरांत श्रीमती के. शांति, मुख्य तकनीकी अधिकारी एवं राजभाषा के नोडल अधिकारी ने सभी के समक्ष राजभाषा का वार्षिक प्रगति रिपोर्ट (2021–22) पेश किया और अंत में कहा कि सभी के सहयोग से ही राजभाषा लक्ष्य की प्राप्ति की ओर हम आगे बढ़ते जा रहे हैं और आशा है कि भविष्य में भी आगे बढ़ते रहेंगे।

संस्थान के समूह समन्वयक (अनुसंधान) डॉ. आर. यशोधा, वैज्ञानिक–'जी' ने अपने भाषण में राजभाषा के

निदेशक महोदय का भाषण

महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) के अंतर्गत आने वाले सभी पत्रों को द्विभाषी में जारी करना चाहिए। राजभाषा अधिनियम 1976 के अंतर्गत सभी केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान होना चाहिए इसलिए सभी को हिन्दी शिक्षण योजना के तहत हिन्दी प्रशिक्षण दिया जाता है।

उसके बाद कुछ कर्मचारियों ने अपने–अपने अनुभव द्वारा हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डाला एवं कहा कि हिन्दी सरल भाषा है जिसे आसानी से सीखा जा सकता है। जहाँ चाह है वहाँ राह है। इसलिए सभी को हिन्दी सीखकर अपने दिन प्रति दिन के कार्यों में प्रयोग करना चाहिए।

संस्थान के निदेशक डॉ. सि. कुञ्ञिकण्णन महोदय जी ने प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाण–पत्र एवं पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया एवं सभी सहभागियों को भी प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया। पुरस्कार वितरण के बाद निदेशक जी ने अपने भाषण में संस्थान के द्वारा राजभाषा

विजेताओं को पुरस्कार वितरण

कार्यान्वयन में की गई प्रगति के लिए राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों को बधाई दी और अपने अनुभव द्वारा जीवन में भाषा के महत्व को विस्तार से बताया। हिन्दी हमारी राजभाषा है इसलिए सभी को हिन्दी सीखने का प्रयास करना चाहिए। प्रतियोगिताओं के विजेताओं को बधाईयाँ दी और कहा कि इसी तरह राजभाषा से संबन्धित विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेकर उसके प्रचार–प्रसार में अपना योगदान देते रहें।

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन, कनिष्ठ अनुवादक ने धन्यवाद प्रस्ताव किया और राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

13 वन उत्पादकता संस्थान, राँची में राजभाषा गतिविधियाँ

हिन्दी पखवाड़ा एवं राजभाषा दिवस का आयोजन–2022

वन उत्पादकता संस्थान, राँची के निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी के नेतृत्व में सितंबर माह में हिंदी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। निदेशक महोदय ने राजभाषा प्रतिज्ञा के साथ हिंदी पखवाड़ा का उद्घाटन किया, जिसमें संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों और शोधार्थियों ने भाग लिया। इस दौरान विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया, जिसमें भाषण प्रतियोगिता, स्वरचित कविता पाठ, निबंध लेखन और 'फोटो खींचो– स्लोगन दो' प्रतियोगिता शामिल थी।

हिंदी पखवाड़ा समापन समारोह कार्यक्रम संस्थान के समूह समन्वयक अनुसंधान, डॉ. योगेश्वर मिश्रा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसका संचालन हिंदी अधिकारी, श्रीमती रूबी सुसाना कुजूर ने किया जिसमें संस्थान के समस्त अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया।

श्रीमती रूबी सुसाना कुजूर ने हिंदी भाषा के प्रचार – प्रसार हेतु उठाये गये प्रयासों की चर्चा की एवं कार्यक्रम परिचय के बाद डॉ. योगेश्वर मिश्रा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिंदी में कार्यालयीन गतिविधियों को बढ़ाने का आह्वान किया। उन्होंने बताया कि देश की आजादी से ले कर देश के विकास और अनेकता में एकता रुपी भारतीय जनमानस को एक साथ जोड़कर रखने में हिंदी भाषा की भूमिका अहम है। जरूरत है कि सम्पूर्ण भारतवासी संवाद एवं पत्राचार हिंदी में करें और भारत को विश्व गुरु बनाने में सहायक हों। उन्होंने अनेक विचारकों, समाज सुधारकों की उक्तियों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया। हिंदी पखवाड़ा के दौरान हिंदी के विकास संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों की उन्होंने सराहना की एवं कहा कि वैज्ञानिक तथ्यों को भी हिंदी में प्रस्तुत करने की पहल जरूरी है।

कार्यक्रम के अंत में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र दे कर सम्मानित किया गया,

राजभाषा प्रतिज्ञा दिलाते हुए निदेशक महोदय

साथ ही हिन्दी भाषा में कार्य करने वालों को प्रोत्साहित करने हेतु उनके द्वारा हिन्दी में किये गए वर्षवार कार्यों के आधार पर श्री परशुराम उपाध्याय, सहायक, श्री राम कुमार महतो, तकनीकी अधिकारी, श्री सुशित बनर्जी, तकनीकी अधिकारी एवं श्री अमित कुमार साहा, तकनीकी अधिकारी को पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतिभागियों तथा हिन्दी भाषा में कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को डॉ. योगेश्वर मिश्रा, समूह समन्वयक (अनुसंधान) एवं संचालिका श्रीमती रुबी सुसाना कुजूर, हिंदी अधिकारी ने बधाई दी एवं भविष्य में और उत्साह के साथ भाग लेने की अपील की।

कार्यक्रम के अंत में हिंदी अधिकारी, श्रीमती रुबी सुसाना कुजूर ने उपस्थित कर्मचारियों, मूल्यांकन समिति के सदस्यों तथा सफल व्यवस्था के लिए श्री राम कुमार महतो, श्री सूरज कुमार, श्री बसंत कुमार एवं सुश्री ज्योत्सना प्रिया का आभार व्यक्त करते हुए सभी को धन्यवाद ज्ञापित किया।

14 काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू में राजभाषा गतिविधियाँ

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान में 14 सितंबर से 29 सितंबर 2022 तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन दिनांक 14 सितंबर 2022 को किया गया। समारोह में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में संस्थान के अधिकारीगण एवं कर्मचारीवृन्द ने बड़ी तन्मयता से भाग लिया।

उद्घाटन समारोह में संस्थान के अधिकारीगण एवं कर्मचारीवृन्द ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. एम. पी. सिंह, भा.व.से, समूह समन्वयक (अनुसंधान), श्री वी. एस. शेट्टेप्पनवर, भा.व.से,

हिन्दी दिवस समारोह का आयोजन

डब्ल्यू.पी.यू. विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. एस. आर. शुक्ल, वैज्ञानिक–'जी' एवं हिन्दी के प्रभारी अधिकारी, डॉ. एन. पलनिकांत, भा.व.से. तथा हिन्दी पखवाड़ा आयोजन समिति के अध्यक्ष, डॉ. अनिल कुमार सेठी, वैज्ञानिक–'ई' ने राजभाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार हेतु अपने विचार व्यक्त किए। संस्थान के निदेशक डॉ. एम. पी. सिंह, भा.व.से. ने अधिकारीगण एवं कर्मचारीवृन्द को संबोधित किया तथा सभी अधिकारी एवं कर्मचारियों से राजभाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में सहयोग हेतु अनुरोध किया।

समापन समारोह के अंतिम चरण में श्री दीपक कुमार, तकनीकी सहायक द्वारा धन्यवाद ज्ञापन किया गया तथा राष्ट्रगान के उपरान्त समारोह के समापन की घोषणा की गई। संस्थान के सभी कर्मचारियों ने अत्यंत ही उत्साहपूर्वक इस कार्यक्रम में भाग लिया ।

सम्मेलनः हिंदी दिवस, 2022 एवं अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन, सूरत (गुजरात) में 14–15 सितंबर को आयोजित किया गया तथा संस्थान की तरफ से इसमें डॉ. एम. बी. सिंह, कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक एवं सुश्री नवीना, अवर श्रेणी लिपिक ने भाग लिया।

विजेताओं को पुरस्कार वितरण

बैठकः संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें दिनांक 30 सितंबर 2021, 27 नवंबर 2021 एवं 22 जून 2022 को आयोजित की गईं।

कार्यशाला एवं प्रशिक्षणः 28 दिसम्बर 2021 को एवं 30 मार्च 2022 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। 27 जून 2022 को अधिकारीगण हेतु राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम आयोजन किया गया। 30 सितंबर 2022 को तकनीकी कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

15 वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में राजभाषा गतिविधियाँ

हिन्दी पखवाड़ा–2022 समारोह का आयोजन

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए दिनांक 14 सितम्बर से 29 सितम्बर, 2022 तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़ा–2022 समारोह का शुभारंभ सामूहिक रूप से दिनांक 14 सितम्बर, 2022 को माननीय केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह की अध्यक्षता में पंडित दीन दयाल उपाध्याय स्टेडियम, सूरत, गुजरात में किया गया। इस अवसर पर कार्यक्रम में प्रत्यक्ष रूप से संस्थान के कनिष्ठ अनुवादक श्री शंकर शॉ ने सहभागिता की तथा वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट के अन्य वरिष्ठ वैज्ञानिक, अधिकारी एवं कर्मचारी लाइव वेबकॉस्ट के माध्यम से इस कार्यक्रम के साक्षी बने।

विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर कार्यशाला का आयोजन

संस्थान में हिन्दी पखवाड़े के दौरान निबंध लेखन प्रतियोगिता, आशुभाषण प्रतियोगिता, हिन्दी श्रुतलेख प्रतियोगिता, हिन्दी पत्र एवं टिप्पण लेखन प्रतियोगिता, हिन्दी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता एवं कविता पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं परियोजना स्टाफ ने प्रतिभागिता की।

हिन्दी पखवाड़ा–2022 समारोह का समापन दिनांक 29 सितम्बर, 2022 को संस्थान के ब्रह्मपुत्र सम्मेलन कक्ष में किया गया। कार्यक्रम में संस्थान के कनिष्ठ अनुवादक श्री शंकर शॉ द्वारा संस्थान में हिन्दी कार्यान्वयन की वर्तमान स्थिति एवं विभिन्न उपलब्धियों पर विस्तारपूर्वक आख्या प्रस्तुत की गई।

संस्थान के निदेशक डॉ. राजीव कुमार बोरा, वैज्ञानिक–'जी' ने इस अवसर पर सभी को हिन्दी दिवस की शुभकामनाएं दी तथा सभी प्रभागाध्यक्षों, वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों से संस्थान के राजभाषा लक्ष्यों को प्राप्त करने का अनुरोध किया। संस्थान के वन वर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग के प्रभागाध्यक्ष श्री बिजय प्रधान ने कहा कि जितना हम सब अपने सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं उतना हम सभी हिन्दी का प्रयोग करें तो हम जल्द ही राजभाषा लक्ष्यों को प्राप्त कर लेगें।

कार्यक्रम में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को नकद पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र वितरित किए गए। वित्तीय वर्ष 2021–22 के लिए सरकारी कामकाज में 10,000 से अधिक शब्दों का प्रयोग करने हेतु श्री अजय कुमार,

वैज्ञानिक–'डी' को कुल 5000/– (पाँच हजार) रुपये की नकद पुरस्कार के घोषणा के साथ उन्हें प्रमाणपत्र भी प्रदान किया गया।

कार्यक्रम के अंत में श्री अजय कुमार, वैज्ञानिक–'डी' ने धन्यवाद ज्ञापन किया। अपने संबोधन में हिन्दी दिवस को सफल बनाने एवं प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए सभी प्रतिभागियों का आभार व्यक्त किया।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति (रा.का.स.) की बैठक

संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति (रा.का.स.) की बैठक वर्ष 2021 में दिनांक 01 सितंबर 2021 एवं 24 दिसंबर 2021 को तथा वर्ष 2022 में दिनांक 06 अप्रैल 2022 एवं 05 जुलाई 2022 को आयोजित की गयी।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में सहभागिता

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (न.रा.का.स.), जोरहाट की 38वीं बैठक दिनांक 30 मार्च, 2022 को आयोजित की गई। उक्त बैठक में सदस्य कार्यालय वर्षा वन

विजेताओं को पुरस्कार वितरण

अनुसंधान संस्थान, जोरहाट से श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवादक ने सहभागिता की।

कार्यशालाओं का आयोजन

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट के ब्रह्मपुत्र कक्ष में दिनांक 10 जनवरी, 2022 को राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए विश्व हिन्दी दिवस के अवसर पर 'कार्यालयीन हिन्दी पत्राचार' विषय पर हिन्दी वृत्तचित्र कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसके अतिरिक्त संस्थान के कार्मिकों को राजभाषा के संवैधानिक प्रावधानों, राजभाषा अधिनियम, राजभाषा नियम, राजभाषा नीतियों से अवगत कराने के उद्देश्य से दिनांक 17 जून, 2022 को एक **'राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी कार्यशाला'** का आयोजन किया गया। 'राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता' में संस्थान के कुल 40 से भी अधिक कार्मिकों ने भाग लिया।

सम्मेलनों में सहभागिता:

राजभाषा विभाग द्वारा दिनांक 18 दिसम्बर, 2021 को आयोजित पूर्व और पूर्वोत्तर का संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा

अधिकारीगणों के हाथों पुरस्कार व प्रमाणपत्र ग्रहण करते श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवादक

सम्मेलन में संस्थान की तरफ से श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवादक ने सहभागिता की।

जगदम्बी प्रसाद यादव स्मृति प्रतिष्ठान के तत्वाधान में गंगटोक, सिक्किम में आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा हिन्दी सम्मेलन (29–30 अप्रैल, 2022) के दो दिवसीय कार्यक्रम में संस्थान से श्री शंकर शॉ, कनिष्ठ अनुवादक ने सहभागिता की।

16 उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में राजभाषा गतिविधियाँ

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, (उ.व.अ.स.) जबलपुर में डॉ. जी राजेश्वर राव, कृ.अ.से., निदेशक के पर्यवेक्षण में संघ की राजभाषा नीति का अनुपालन सुनिश्चित किया गया, इस दौरान, निदेशक महोदय की अध्यक्षता में प्रत्येक तिमाही में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें तय समयावधि में आयोजित की गईं। राजभाषा विभाग के वार्षिक कार्यक्रम में उल्लेखित बिन्दुओं से अवगत कराते हुए इस संस्थान के अधिकार क्षेत्र में आने वाले संबंधित बिन्दुओं पर हस्ताक्षरकर्ता अधिकारी एवं पदाधिकारी वर्ग द्वारा सतर्कता से अमल सुनिश्चित किया गया।

संस्थान में हिन्दी पखवाड़े का प्रारंभ 14 सितंबर 2022 को माननीय श्री अमित शाह जी, गृह मंत्री एवं सहकारिता मंत्री भारत सरकार की अध्यक्षता में पंडित दीनदयाल उपाध्याय इंडोर स्टेडियम सूरत, गुजरात में आयोजित हिन्दी दिवस समारोह 2022 एवं द्वितीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन से हुआ। श्री विजयकुमार डी. काम्बले, सहायक निदेशक (राजभाषा) ने संस्थान की तरफ से प्रतिभागिता की।

14 सितंबर 2022 को राजभाषा विभाग द्वारा हिन्दी दिवस–2022 पर जारी संदेश का श्रीमती नीलू सिंह, समूह समन्वयक (अनुंसधान) द्वारा संस्थान के प्रशासनिक भवन के प्रांगण में वाचन किया गया।

हिन्दी पखवाड़े के दौरान संस्थान में कार्यरत पदाधिकारियों एवं शोध छात्रों के लिए राजभाषा हिन्दी की विविध प्रतियोगिताएं आयोजित कर सफल प्रतियोगियों को पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित किया गया। इस दौरान, पदाधिकारी वर्ग द्वारा राजभाषा अधिनियम 1963 यथा संशोधित 1967 की धारा 3(3), राजभाषा नियम, 1976 के नियम 5 का अनुपालन सुनिश्चित किया गया और 'क' 'ख' क्षेत्र स्थित केन्द्र एवं राज्य सरकार के कार्यालयों के साथ हिन्दी में तथा 'ग' क्षेत्र स्थित केन्द्र सरकार के कार्यालयों के साथ हिन्दी–अंग्रेजी अर्थात् द्विभाषी रूप में पत्राचार कर हिन्दी पत्राचर के निर्धारित लक्ष्य को हासिल करने के साथ–साथ संस्थान के शासकीय काम–काज हेतु प्रयोग में आने वाली प्रचलित फाईलों में हिन्दी में टिप्पणियाँ लिखकर निर्धारित लक्ष्य भी हासिल किया गया। यह संस्थान, जबलपुर स्थित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति कार्यालय–02 का सदस्य है, जो 'नराकास' द्वारा आयोजित बैठकों में भाग लेकर संघ के शासकीय काम–काज में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में 'नराकास' द्वारा दिये गये सुझावों पर निरंतर अग्रसर है।

इस दौरान, संस्थान में सेवारत पदाधिकारी वर्ग में अपने संस्थान के दैनिक शासकीय कामकाज में राजभाषा हिन्दी का प्रगामी प्रयोग अधिकाधिक बढ़ाने की दृष्टि से प्रत्येक तिमाही में निदेशक की अध्यक्षता में श्री विजयकुमार डी. काम्बले, सहायक निदेशक (रा.भा.) द्वारा हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। संस्थान में सेवारत समस्त पदाधिकारी वर्ग ने संघ की राजभाषा नीति–नियमों का आदर, सम्मान एवं गौरव के साथ अनुपालन सुनिश्चित करते हुए दैनंदिन शासकीय कामकाज में अधिक से अधिक राजभाषा हिन्दी का प्रयोग कर इस संस्थान के हित में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए प्रण लिया।

17 पलाश (ब्यूटिया मोनोस्पर्मा): एक मनोहारी वृक्ष प्रजाति

डॉ. अदिति टेलर, डॉ. अंजलि जोशी एवं डॉ. पूजा शर्मा
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

ब्यूटिया मोनोस्पर्मा (लैम.), जिसे ''पलाश'' या ''ढाक'' के नाम से भी जाना जाता है, एक मध्यम आकार का पेड़ है जो फैबेसी–फैबोइडी (Fabaceae-Faboideae) परिवार से संबंधित है। यह भारत समेत अन्य दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों जैसे नेपाल, इंडोनेशिया, श्रीलंका और थाईलैंड में पाया जाता है। भारत में यह व्यापक रूप से वितरित है और विभिन्न स्थानीय नामों जैसे किमशुक, हरनी, चीला, खाकारा, परसु, मोड्गु और टेसू के नामों से जाना जाता है। 50 फीट तक की ऊँचाई प्राप्त करने वाला यह वृक्ष एक पर्णपाती प्रजाति है जो वसंत ऋतु के आगमन के साथ फूलों से सुसज्जित हो जाता है। आलंकारिक नारंगी एवं लाल पुष्प समूहों से सुशोभित होने के कारण इस पेड़ की तुलना अग्नि से की जाती है एवं इसे "Flame of the Forest" या "जंगल की लौ" नाम दिया गया है। भारतीय साहित्यिक कृतियों में इन फूलों की तुलना कामदेव तथा किंशुक फूलों के जाल से की गई है। इसके फूलों को वसंत ऋतु का प्रतीक माना गया है व वसंत के स्वागत पर लिखी गई अनेक साहित्यिक अभिव्यक्तियों में इनका उल्लेख मिलता है।

पलाश को भारतीय संस्कृति में विशेष स्थान प्राप्त है। पलाश का उल्लेख देश की कला, साहित्य और प्राचीन ग्रंथों व अन्य आयुर्वेदिक पांडुलिपियों में मिलता है। हिंदू पौराणिक कथाओं के अनुसार पलाश का वर्णन अग्निदेव, अग्नि और युद्ध के देवता, के एक रूप के समान किया गया है। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन काल में छात्रों द्वारा उनके गुरुओं को पलाश की टहनियों को भेंट स्वरूप अर्पित किया जाता था। आज भी इसे एक पवित्र वृक्ष माना जाता है जिसके अनेक धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व हैं। हिंदू घरों में इसकी पत्तियों और टहनियों का उपयोग विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों के लिए किया जाता है। त्योहारों में आयोजित पूजन में पलाश के फूलों का प्रयोग किया जाता है। इसके सूखे तने के टुकड़ों का उपयोग पवित्र अग्नि प्रज्वलन के

पलाश का वृक्ष

लिए किया जाता है। इसकी लकड़ी से बने चम्मच और करछुल का उपयोग विभिन्न पवित्र अनुष्ठानों में अग्नि में घी अर्पित करने के लिए किया जाता है।

पलाश एक महत्वपूर्ण गैर–काष्ठ वन उपज (NTFP) है जिसका ग्रामीण समुदायों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है, विशेष रूप से जनजातियों के लिए आय के एक स्त्रोत के रूप में। किसी भी अन्य गैर–प्रकाष्ठ वन उपज की तरह, जंगल के किनारे बसे गाँवों में रहने वाली ये जनजातियाँ अपनी आजीविका के लिए पलाश पर निर्भर हैं। राजस्थान के स्थानीय लोगों के जीवन में इसका महत्व ISFR 2021 में उल्लिखित आँकड़ों से स्पष्ट है, जिनके अनुसार यह वृक्ष राजस्थान में दर्ज वन क्षेत्र के अंतर्गत द्वितीय सबसे प्रमुख वृक्ष प्रजाति है और 48.33% की सापेक्ष बहुतायत के साथ स्थानीय लोगों द्वारा उपयोग किए जाने वाले गैर–काष्ठ वन उत्पादों में प्रथम स्थान पर है। पलाश एक बहुपयोगी वृक्ष है जिसके अनेक औषधीय एवं अन्य लाभकारी गुण हैं। इसके लगभग सभी भागों का विविध प्रकार से उपयोग किया जाता है।

सर्वप्रथम, यह वृक्ष अपने औषधीय गुणों के लिए प्रख्यात है। इसका उपयोग ग्रामीण और आदिवासी लोग विभिन्न विकारों को ठीक करने में करते रहे हैं। छाल में एस्ट्रिनजेन्ट, कामोत्तेजक और कृमिनाशक गुण होते हैं एवं इसका काढ़ा सर्दी, खाँसी, बुखार, मासिक धर्म संबंधी विकार, ट्यूमर, खूनी बवासीर और अल्सर में उपयोगी है। छाल के गोंद का उपयोग बवासीर, दस्त और पेचिश के इलाज के लिए किया जाता है। इसकी जड़ें फील पाँव (Elephantiasis) और रतौंधी व अन्य दृष्टि दोषों में उपयोगी होती हैं। इसकी पत्तियों और फूलों में कसैलापन, बलवर्धक, मूत्रवर्धक और कामोत्तेजक गुण होते हैं और इसका उपयोग फोड़े, फुंसी, ट्यूमर और बवासीर को ठीक करने के लिए किया जाता है। पत्तियों में टॉनिक, मूत्रवर्धक और कामोत्तेजक गुण होते हैं। इनका उपयोग दाने, मुँहासों, अर्बुद (Tumor) और बवासीर के उपचार के लिए भी किया जाता है। इसके बीजों में रेचक और मूत्रवर्धक गुण होते हैं। कृमिनाशक गुण होने के कारण उनके पाउडर का उपयोग आँतों के परजीवियों को मारने के लिए किया जाता है। फूलों के अर्क का उपयोग उच्च रक्तचाप के इलाज, किडनी के डिटॉक्सीफिकेशन, पाचन तंत्र को बढ़ाने, श्वसन प्रक्रियाओं को मजबूत करने और त्वचा रोगों के उपचार के लिए भी किया जाता है। यह शारीरिक प्रतिरोधकता को बढ़ाने एवं हड्डियों और माँसपेशियों के दर्द को कम करने में भी उपयोगी है और गठिया, ऑस्टियोपोरोसिस व हड्डियों के टूटने जैसे संयुक्त विकारों से राहत प्रदान करता है।

विभिन्न मानव रोगों के इलाज के लिए अपनाए जाने के अलावा इस वृक्ष का उपयोग लकड़ी, गोंद, चारे के रूप में और डाई बनाने के लिए भी किया जाता है। इस वृक्ष से मिलने वाली लकड़ी पानी के नीचे टिकाऊ होती है एवं इसका उपयोग कुओं में किया जाता है। इससे बोर्ड भी बनाए जाते हैं और इसके गूदे का उपयोग समाचार पत्रों का कागज बनाने के लिए किया जाता है। लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में भी किया जाता है और इससे अच्छी गुणवत्ता वाले चारकोल का उत्पादन भी किया जा सकता है। इसकी छाल से निकलने वाले गोंद, 'ब्यूटिया गम' या 'बंगाल कीनो', को स्थानीय बाजार में आजीविका हेतु 400–500 रुपये प्रति किलोग्राम की दर पर बेचा जा सकता है। यह औषधीय गुणों से भरपूर है और इसका उपयोग कुछ खाद्य व्यंजनों में भी किया जाता है। छाल से प्राप्त टैनिन (Tannin) का उपयोग चर्म उद्योग में किया जाता है। मवेशियों के लिए चारे प्रदान करने के अतिरिक्त इसकी पत्तियों का पारंपरिक रूप से पत्तल और दौने बनाने के लिए भी उपयोग किया जाता रहा है। पुरानी पीढ़ियों द्वारा भोजन परोसने के लिए इसके पत्तों का उपयोग पत्तलों और दौनों के रूप में किया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों में इनका उपयोग आज भी दावतों में भोजन परोसने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त, देश के कुछ हिस्सों में इन पत्तियों का उपयोग बीड़ी बनाने तथा पार्सल के लिए पैकिंग सामग्री के रूप में भी किया जाता है। इसके फूलों से मिलने वाली नारंगी डाई का उपयोग पारंपरिक हर्बल होली रंग तैयार करने और कपड़े को रंगने के लिए किया जाता है। आदिवासी इसके फूलों से ग्रीष्म ऋतु में पेय भी तैयार करते हैं जिसके कई औषधीय लाभ हैं। इस वृक्ष की जड़ों और छाल के रेशों का उपयोग डोरी और रस्सी बनाने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग बाँध को बारिश के दौरान ढहने से बचाने के लिए भी किया जाता है। इसके अलावा,यह वृक्ष लाख कीट के लिए एक प्रमुख मेजबान वृक्ष (Host) के रूप में लाख की खेती के लिए उपयोग किया

जाता है जो आदिवासियों और ग्रामीण गरीबों के लिए नियमित आय का स्रोत है।

पलाश के अनगिनत गुणों में से एक विशिष्ट गुण यह है कि यह वृक्ष जैव विविधता का भी समर्थन करता है। जैसा कि सर्वविदित है, जैव विविधता वन पारिस्थितिकी तंत्र का एक आवश्यक अंग है। पलाश के वृक्षों की खिलती शाखाओं पर अद्भुत नारंगी–सिंदूरी रंग के फूलों के बीच अनेक पक्षियों को अमृत/मधुरस (Nectar) की तलाश में एकत्रित होते देखा जा सकता है।

पक्षियों की प्रजातियों के अलावा इन मधुरस से भरे फूलों पर परागणकों जैसे मधुमक्खियों, ततैया और तितलियों द्वारा भी बहुतायत में दौरा किया जाता है। पक्षियों को पलाश की ओर आकर्षित उच्च कीट संख्या से भी लाभ होता है जैसे कि लिटिल ग्रीन बी ईटर जो फूलों पर आने वाली मधुमक्खियों का भोजन स्वरूप सेवन करता है। लंगूर और गिलहरियाँ भी इन फूलों को खाने के लिए पेड़ों की ओर आकर्षित होती हैं।

पलाश निम्नीकृत भूमि के पुनरूद्धार के लिए भी अपार संभावनाए प्रदर्शित करता है। कृषि और वन क्षेत्र में अतिक्रमण के कारण भूमि से संबंधित समस्यायें उजागर हो रही हैं जो कि पारिस्थितिकी तंत्र और उत्पादकता को नुकसान पहुँचाने जैसी गंभीर वैश्विक चिन्ताओं को जन्म दे रहीं हैं। ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि अवक्रमित भूमि का जीर्णोध्दार करने के लिए विधियाँ तैयार की जाऐं जिनसे वन क्षेत्र से समझौता किए बिना वैश्विक खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। ब्यूटिया मोनोस्पर्मा के रोपण से यह पाया गया है कि राइजोस्फेरिक (Rhizospheric) मिट्टी के पीएच (pH) और इलेक्ट्रिकल कंडक्टीविटी (EC) में बंजर भूमि की तुलना में कमी आती है। साथ ही यह राइजोस्फेरिक मिट्टी में जल धारण क्षमता (WHC), ऑर्गेनिक कार्बन (OC), कुल नाइट्रोजन (N), उपलब्ध फास्फोरस (P), माइक्रोबियल बायोमास कार्बन (MBC), एवं एन्जाइम्स जैसे डीहाइड्रोजेनेस, ग्लूकोसिडेस और ऐल्कलाइन फॉस्फटऐस की गतिविधियों को बढ़ाता है। इस प्रकार, पलाश भूमि की जैविक गतिविधियों में भी वृद्धि करता है। इस विषय पर बेहतर अंतर्दृष्टि के लिए व्यापक शोध किए जाने की आवश्यकता है।

पलाश की बहुपयोगिता को देखते हुए इस पेड़ के संरक्षण को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। विशेष रूप से राजस्थान में जहाँ अरावली की पहाड़ियाँ हर वसंत में एक सुर्ख लाल रंग में रंग जाती है, जहाँ यह प्रजाति कभी बहुतायत में पाई जाती थी, वहाँ आज इस प्रजाति की आबादी बहुत कम हो गई है। इस प्रजाति के संरक्षण के लिए राज्य में इन वृक्षों पर फूल खिलने के मौसम में पलाश उत्सव भी आयोजित किया जाता है। वन विभाग द्वारा स्वैच्छिक संगठनों के सहयोग से वर्ष 2021 में अंतर्राष्ट्रीय वन दिवस और अंतर्राष्ट्रीय रंग वर्ष के अवसर पर पहला पलाश उत्सव आयोजित किया गया था। उनके संयुक्त उद्यम में शहरों के पास पलाश के उपवनों को विकसित किया जाएगा ताकि इन मनोहर पेड़ों के संरक्षण की आवश्यकता को लेकर लोगों में जागरूकता फैलाई जा सके और लोगों में इनके लिए एक प्रेमभाव व जुड़ाव विकसित किया जा सके। राजस्थान के वन विभाग पलाश से बने हर्बल रंगों (गुलाल) की बिक्री में भी सहायता प्रदान कर रहें हैं, जिससे इन पारंपरिक रंगों को तैयार करने में शामिल आदिवासी लोगों, विशेष रूप से आदिवासी महिलाओं को समर्थन व प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इससे भी पलाश की महत्ता का लोगों को आभास होगा।

पलाश के पेड़ अपने अद्भुत नारंगी–सिंदूर के फूलों को प्रदर्शित करते हुए (चित्र श्रेय: श्री राहुल त्रिपाठी)

18 दिव्य चमेली (*तमिलनाडिया यूलिगिनोसा*): एक औषधीय वृक्ष

श्री रवि शंकर प्रसाद एवं श्री रिकेश कुमार
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

पेंडारी को दिव्य चमेली भी कहा जाता है। यह मध्यम आकार का वृक्ष है। इसकी ऊंचाई 7 से 8 मीटर तक होती है। इसकी पत्तियाँ चम्मच के आकर की होती है। इसके फूल सफ़ेद रंग के पांच पंखुरियों वाले होते है और बहुत ही सुगन्धित होते है तथा इसके फल अंडाकार और स्वाद में बहुत मीठे होते है। इसकी शाखाएं कठोर और चतुष्कोणीय होती है। इसके छाल गहरे भूरे रंग के होते है। ये जड़ से भी अपना विस्तार करते है। इसकी पत्तियाँ आमने–सामने होती है और कांटे जोड़ो में पाए जाते हैं। ये *रूबीएसी* परिवार का सदस्य है। झारखण्ड में इसमें फूल और फल अप्रैल से जून में आते है। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और इसका रंग ग्रे और हल्के भूरे रंग की होती है। इसमें हार्टवुड नहीं होता है। ये ज्यादातर उद्यानों में सुंदरता के लिए लगाया जाता है। तमिलनाडु जीनस भारत में तमिलनाडु राज्य के नाम पर आधारित है। *यूलिगिनोसा* दलदली क्षेत्र में पाया जाता है।

दिव्य चमेली का वृक्ष

यह मुख्यतः शुष्क पर्णपाती वनों में पाया जाता है। हिंदी में इसे पिंडारी, भरनी और कतुल कहा जाता है। संस्कृत में इसे देववतमाला और पिंडालू भी कहा जाता है। मलयालम में इसे करा और मालंकारा कहा जाता है तथा अंग्रेजी में इसे दिव्यं चमेली कहा जाता है। इसे बहुत सारे अन्य पर्यायवाचियों से भी जाना जाता है।

ये भारत और इंडो–चायना में बहुतायत से पाए जाते है। इसके अलावा ये बांग्लादेश श्रीलंका, थाईलैंड, लाओस, कॉम्बोडिया और वियतनाम में भी पाए जाते है। झारखण्ड में यह मुख्य रूप से दलमा और बेतला क्षेत्र में पाए जाते है। दलमा में तो एक विश्राम गृह का नाम भी इस प्रजाति पर रखा गया है क्योंकि हिंदी में इसे पेंडारी भी कहा जाता है।

यह वृक्ष उप हिमालय क्षेत्रों में यमुना से पूर्वोत्तर और पूर्वी मध्य और दक्षिण भारत के तमिलनाडु में बहुतायत से पाया जाता है। यह समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है। आँध्रप्रदेश के ये सभी ज़िलों में पाया जाता है। ये ज्यादातर नम और दलदली क्षेत्रों में और नदी किनारे पाए जाते है।

परंपरागत रूप से इसका इस्तेमाल व्यापक रूप से आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी चिकित्सा में किया जाता है। पौधे की पत्तियों का उपयोग हैजा, दस्त, पेचिश, आंखों की शिकायत और फुंसी जैसी विभिन्न बीमारियों के लिए किया जाता है। पत्तियों का उपयोग कुष्ठ रोग, त्वचा रोग, घाव, अल्सर, खांसी, दमा, ब्रोंकाइटिस, बुखार और पेट के दर्द से राहत के लिए एक उपाय के रूप में भी किया जाता है। इस पौधे की पत्तियों से बने काढ़े को लगातार छींकने के उपाय

के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस पौधे की पत्तियों का पानी उबालकर पीने से जोड़ों का दर्द कम होता है। फलों को उबालकर या भूनकर खाया जाता है या तो अकेले या अन्य सब्जियों के साथ करी के रूप में बनाया जाता है।

इसके अलावा इसके फल का इस्तेमाल मछली को बेहोश करने के लिए किया जाता है ताकि वे आसानी से पकड़ी जा सके। इस पौधे के विभिन्न भागों का इस्तेमाल विभिन्न बीमारियों में किया जाता है। औषधि के अलावा ग्रामीण लोग इसका इस्तेमाल सब्जी बनाने में करते है। इसके कच्चे फलों का इस्तेमाल उबाल कर या आग में भून कर किया जाता है। इसके पके फल स्वाद में मीठे होते है। इसकी पतियों का उपयोग ग्रामीण लोग चारा के रूप में करते है। इसके फलों से एसेंशियल ऑयल प्राप्त होता है। इसके छाल का उपयोग ग्रामीण लोग हड्डी जोड़ने के लिए करते है।

यह एक दिव्य वृक्ष है, इस कारण इसके प्रत्येक भाग का इस्तेमाल औषधि के रूप में किया जाता है। इसकी पत्तियों का इस्तेमाल ग्रामीण लोग जाड़े के दिनों में करते हैं तथा इसकी लकड़ी का काढ़ा बनाकर पीने से खून में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है। यह मानव जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी वृक्ष है। आयुर्वेद में इसका बहुत ही महत्व है, आजकल आयुर्वेदिक औषधि का महत्व इस लिए बढ़ गया है क्योंकि इससे कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। इसे बीजों द्वारा आसानी से उगाया जा सकता है, इसके फलों

दिव्य चमेली के फूल

को पकने के बाद इकट्ठा किया जाता है और उनसे बीज निकाल कर सुखा लिया जाता है। तत्पश्चात उसे पॉलीबैग या बेड में लगाया जाता है पौधे को लगभग दो फ़ीट के होने के बाद क्षेत्र में लगाया जाता है।

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए–से,
ऊँघते अनमने जंगल।

झाड़ ऊँचे और नीचे
चुप खड़े हैं आँख मींचे,
घास चुप है, कास चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है,

बन सके तो धँसो इनमें,
धँस न पाती हवा जिनमें,
सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए–से
ऊँघते अनमने जंगल।

– **भवानीप्रसाद मिश्र**

19 परागणकों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

श्री पवन कुमार, श्री अखिल कुमार एवं सुश्री आँचल वर्मा
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परागणकर्ता परागण सेवाएं प्रदान करते हैं जो कृषि और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि दुनिया की तीन–चौथाई से अधिक फसलें और सभी फूलों के 80% से अधिक पौधे परागणकों, विशेष रूप से मधुमक्खियों पर निर्भर हैं। संपूर्ण विश्व में 1,200 फसलों की किस्मों सहित 1,80,000 से अधिक पौधों की प्रजातियाँ प्रजनन के लिये परागणकों पर निर्भर हैं।

'खाद्य और कृषि संगठन' के अनुसार, विश्व भर में परागणकों की 1,50,000 प्रजातियाँ विद्यमान हैं जो सिर्फ फूलों पर मड़राती हैं। इनमें से 25,000 से 30,000 प्रजातियाँ मधुमक्खियों में शामिल हैं। विश्व स्तर पर, कृषि फसलों में परागणकों का वार्षिक योगदान लगभग 200 बिलियन अमरीकी डॉलर आंका गया है। हालांकि, दुनिया भर में परागणक आबादी और विविधता घट रही है। यह किसानों की आजीविका, राष्ट्रीय कृषि अर्थव्यवस्थाओं और खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले कृषि उत्पादन के लिए एक गंभीर खतरा प्रस्तुत करता है। अध्ययन में बांग्लादेश, भूटान, चटगांव के पहाड़ी इलाकों, उत्तर पश्चिमी भारतीय हिमालय में हिमाचल प्रदेश और कश्मीर तथा मध्य भारतीय हिमालय के उत्तराखण्ड में अध्ययन द्वारा कवर की गई फसलों और पाकिस्तान का हिमालयी क्षेत्र के लिए कीट परागण के कुल आर्थिक मूल्य का लगभग 2.7 बिलियन अमरीकी डॉलर सालाना अनुमान लगाया गया है। वैश्विक परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन के कारण निवास स्थान की हानि, भौगोलिक परिवर्तन और जैव विविधता के विलुप्त होने की दर में वृद्धि हो रही है। इसलिए, बदलती जलवायु के संभावित प्रभावों को कम करना और खाद्य सुरक्षा और कृषि स्थिरता सुनिश्चित करना, समय की आवश्यकता बन गई है।

कुछ कृषि फसलों, अधिकांश फलों और सब्जियों का उत्पादन कीट परागणकों द्वारा परागण पर निर्भर करता है। परागणकों पर सबसे अधिक संभावित प्रभाव तापमान में वृद्धि के परिणामस्वरूप होता है। यदि औसत वैश्विक तापमान में 1.5–2.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होती है, तो लगभग 20–30 प्रतिशत ज्ञात प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा हो सकता है। मधुमक्खियां और अन्य परागणकर्ता कृषि पारिस्थितिकी प्रणालियों का एक अभिन्न अंग हैं क्योंकि ये सूक्ष्म जीव परागण सेवाओं के माध्यम से विभिन्न फसलों के बीज सेट, उपज और गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं। पौधों में प्रजनन का कार्य परागण की प्रक्रिया द्वारा भी किया जाता है। जब किसी पुष्प का परागकण नर–भाग (परागकोष) निकलकर किसी दूसरे पुष्प या फिर किसी दूसरे पौधे के पुष्पमादा–भाग (वर्तिकाग्र) तक पहुँचता है, तो इस क्रिया को परागण कहते हैं। यह कार्य परागणकों द्वारा किया जाता है। परागण की क्रिया दो विधियों द्वारा होती है, **परपरागण**– जब परागण की क्रिया एक ही पौधों के अलग–अलग पुष्प या जाति के अलग–अलग पौधों के पुष्प में हो तब इसे परपरागण कहते है। **स्वपरागण**– जब परागण की क्रिया किसी पुष्प के परागकोष से परागकण निकालकर उसी पौधे के पुष्प पर पड़ता है तो वह स्वपरागण कहलाता है।

परागण के अभिकर्मक या कारक

पौधे परागण के अभिकर्मक या कारक के रूप मे दो अजीवीय (वायु एवं जल) तथा एक जीवीय (प्राणि) संसाधनों का प्रयोग करते हैं। अधिकतर पौधे परागण के लिए जीवीय (प्राणि) संसाधन का उपयोग करते हैं। कुछ पौधों में परागण का कार्य कीट परागणकों द्वारा किया जाता है जिसमें मधुमक्खियां, भौंरा, चींटियाँ, होवरफ्लाइज, तितलियाँ और पतंगे शामिल हैं तथा कुछ पौधों में परागण का कार्य अन्य

जीवों द्वारा भी किया जाता है जिसमें मुख्य रूप से पक्षी, चमगादड़, छिपकलियां आदि शामिल हैं।

विश्व के प्रमुख परागणकर्ता

विश्व के प्रमुख परागणकर्ताओं की सूची में सबसे आधिक 63% मधुमक्खियां, 16% मक्खियाँ, 6% चमगादड़, 4%

परागण करते हुए कीट

भृंग, 4% ततैया, 4% पक्षी, 3% तितलियाँ और पतंगे शामिल हैं। विभिन्न फसलें विभिन्न कीट परागणकों पर निर्भर करती हैं। कुछ फसलें विशेषज्ञ परागणकों पर निर्भर करती हैं।

परागणकर्ता एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिक कार्य करते हैं, जो दुनिया के अधिकांश पौधों की विविधता और संबंधित जीवों तथा कृषि का एक महत्वपूर्ण अंश हैं। वैज्ञानिक साहित्य और सार्वजनिक चेतना दोनों में परागणकों का उच्च दर्जा है। हालांकि यह लंबे समय से ज्ञात है कि मधुमक्खियों की विविधता, परागणकों के प्रमुख समूहों में से एक है।

कृषि के लिए परागण महत्वपूर्ण है, उत्पादित सभी खाद्य फसलों में से लगभग एक तिहाई को कीट परागणकों की आवश्यकता होती है। यदि परागणकों की जनसंख्या में गिरावट जारी रहती है, तो संभवतः फसल उत्पादन में समग्र गिरावट और खाद्य कीमतों में वृद्धि हो सकती है। परागण उपज बढ़ा सकते हैं और कई फसलों की गुणवत्ता में सुधार भी कर सकते हैं और साल दर साल कम भी कर सकते हैं। यदि आवश्यक फसलों को परागित करने के लिए पर्याप्त कीट उपलब्ध नहीं हैं, तो वे अपनी पूरी क्षमता से उपज नहीं देंगे। कई कीट परागण वाली फसलें उच्च उपज देने वाली, पौष्टिक और उच्च आर्थिक मूल्य की होती हैं। विकासशील देशों में कई कीट परागित फसलें जैसे कॉफी और कोको का उत्पादन भी एक महत्वपूर्ण आय स्रोत हैं।

कीट परागणकर्ता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव एवं खाद्य सुरक्षा

कीट परागणकर्ता तथा जैव–संकेतक प्रजातियां विशेष रूप से जलवायु के प्रति संवेदनशील हैं और जलवायु परिवर्तन के महत्वपूर्ण जैव–संकेतक हैं और उनकी बहुतायत आमतौर पर एक स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र का संकेत देती है। कीट परागणकों और जैव–संकेतक प्रजातियों की उपस्थिति बहुत से कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें भोजन और जलवायु परिस्थितियों की उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण है। परागणक और जैव–संकेतक प्रजातियां अन्य जीवों के वितरण को भी नियंत्रित करते हैं। इसके अलावा, शिकारियों और परजीवियों की बहुतायत भी उनकी आबादी को निर्धारित करती है। जलवायु परिवर्तन पौधों और फूलों की वृद्धि को प्रभावित कर रही है।

पिछले कुछ दशकों में ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव देखने को मिला है। भू–वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में वृद्धि हुई है जिस कारण परागणकों की आबादी में गिरावट हो रही है तथा कुछ प्रजातियाँ समाप्त हो सकती हैं। परागणकों की आबादी में गिरावट में योगदान देने वाले मुख्य कारणों में कीटनाशकों का भारी मात्रा में उपयोग, पित्ती का कुप्रबंधन, अनुवांशिक परिवर्तित फसलें (GMO) और रासायनिक संदूषण भी शामिल हैं। परागणकों के लिए प्रमुख खतरा आवास हानि, विखंडन कृषि, संसाधन निष्कर्षण, शहरी और उपनगरीय विकास से है।

परागणकों का संरक्षण

हाल ही में 'खाद्य और कृषि संगठन' द्वारा इस बात के लिये चेतावनी दी गई है कि विश्व में लगभग 40% 'अकशेरुक परागणक प्रजातियाँ' विलुप्त हो सकती हैं, जिनमें मधुमक्खियाँ और तितलियाँ प्रमुख रूप से शामिल हैं। भारत में, जंगली मधुमक्खियों की एपिस प्रजाति (Genus) की संख्या में पिछले 30 सालों में काफी गिरावट देखी गई है। इनमें एशियाई मधुमक्खी सेराना (cerana) और छोटे आकार वाली मधुमक्खी, फ्लोरिया (florea) भी शामिल है। उत्तराखण्ड के हल्द्वानी में चार एकड़ में तितलियों, मधुमक्खियों, पक्षियों और कीटों की 40 प्रजातियों के साथ देश का पहला परागणकर्ता पार्क (Pollinator Park) विकसित किया गया है। इस पार्क को विकसित करने का उद्देश्य विभिन्न परागण प्रजातियों का संरक्षण करना, इन प्रजातियों के संरक्षण के महत्व के बारे में सामान्य रूप से लोगों में जागरूकता पैदा करना और परागण के विभिन्न पहलुओं पर शोध को बढ़ावा देना है। पार्क में वर्तमान में परागणकों की 40 प्रजातियाँ हैं, जिनमें कॉमन जेजेबेल, कॉमन इमिग्रेंट, रेड पायरोट, कॉमन सेलर, प्लेन टाइगर, कॉमन लेपर्ड, कॉमन मोरन, कॉमन ग्रास यलो, कॉमन ब्लू बॉटल, कॉमन फोर–रिंग, पीकॉक पैंसी, पेटेंट लेडी, पायनियर वाइट, पीले–नारंगी टिप और लाइम तितली शामिल हैं। परिस्थितिकी तंत्र के लिए मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकों के महत्व, योगदान और उनके संरक्षण व मानवीय गतिविधियों के कारण मधुमक्खियों को होने वाले खतरों से जनसाधारण को जागरूक करने के लिए 20 मई को विश्व मधुमक्खी दिवस मनाया जाता है।

निष्कर्ष

भारत में, इंटरनेशनल सेंटर फॉर इंटीग्रेटेड माउंटेन डेवलपमेंट द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि अपर्याप्त परागण के परिणामस्वरूप सेब की उत्पादकता में गिरावट आई है। भारत में सब्जियों के उत्पादन में गिरावट का कारण परागणकों में गिरावट भी है। भारत में, जलवायु परिवर्तन को गंभीरता से लेने की आवश्यकता है, क्योंकि इस घटना का परागणक आबादी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ सकता है जिससे उत्पादन में कमी आ सकती है और जिससे खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। इसलिए,

परागण करते हुए तितलियाँ

सभी के लिए उच्च उत्पादन और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, मधुमक्खियों और अन्य परागणकों के संरक्षण, बहाली और वृद्धि के लिए रणनीतियों और नीतियों को विकसित और कार्यान्वित किया जाना चाहिए ताकि उन्हें जलवायु परिवर्तन के वास्तविक कहर से बचाया जा सके।

20 *कॉमिफोरा वाइटी* (गुग्गुल): भारतीय शुष्क क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण औषधीय प्रजाति

डॉ. अंजलि जोशी, डॉ. अदिति टेलर एवं डॉ. पूजा शर्मा
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

कॉमिफोरा वाइटी एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है जो मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और कर्नाटक के चट्टानी इलाकों में पाया जाता है। भारत में इस पौधे को गुग्गुल के नाम से जाना जाता है और इस पौधे की शाखाओं के दोहन से प्राप्त होने वाले ओलियो–गम–रेजिन को व्यापक रूप से धूप और इत्र उद्योगों में उपयोग किया जाता है। ई–गुग्गलस्टेरोन और जेड–गुग्गलस्टेरोन, ओलियो–गम–रेजिन में पाए जाने वाले दो महत्वपूर्ण घटक हैं जो मनुष्यों में जैविक रूप से सक्रिय पाए गए हैं और त्वचा, कोलेस्ट्रॉल प्रबंधन एवं थायरॉयड चयापचय को प्रभावित करते हैं। ओलियो–गम–रेजिन में गुग्गुलस्टेरोन की कुल मात्रा 0.75 से 2.35% तक होती है और यह पौधे के जीनोटाइप के साथ–साथ उसके पर्यावरणीय परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। *कॉमिफोरा वाइटी* से प्राप्त होने वाले ओलियो–गम–रेजिन के औषधीय गुणों के कारण, बड़े पैमाने पर इसका उपयोग आयुर्वेदिक दवाओं के उत्पादन में किया जाता है। औषधीय गुणों के अलावा कॉमिफोरा वाइटी न सिर्फ रेगिस्तान की प्रतिकूल परिस्थितियों में उगता है बल्कि रेगिस्तानी पारिस्थितिकी को स्थिर करने में मदद भी करता है। इसके अलावा ओलियो–गम–रेजिन का उपयोग रेशम और कपास की रंगाई, केलिको–प्रिंटिंग और जलाने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली लकड़ी के रूप में भी किया जाता है। *कॉमिफोरा वाइटी* की लकड़ी एक उत्कृष्ट ईंधन है और रेजिन की उपस्थिति के कारण यह गीली होने पर भी जलती है, इसलिए, ग्रामीणों द्वारा इसका उपयोग खाना पकाने के ईंधन के रूप में किया जाता है। इसके अलावा कॉमिफोरा वाइटी की पत्तियाँ पशुओं के चारे का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी है। इसकी शाखाओं का उपयोग टूथ–ब्रश के रूप में भी किया जाता है और यह पौधा जैव बाड़ के रूप में भी लगाया जाता है।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में *कॉमिफोरा वाइटी* से प्राप्त ओलियो–गम–रेजिन की माँग बहुत अधिक है, लेकिन उच्च माँग के बावजूद, इस पौधे का व्यावसायिक उत्पादन बहुत कम है और अधिकांश माँग जंगल में प्राकृतिक रूप से उग रहे पौधों के दोहन से या अन्य देशों से आयात करके पूरी की जाती है। ओलियो–गम–रेजिन का दोहन एक विनाशकारी प्रक्रिया है जिसमें गम–रेजिन के निकालने के तुरंत बाद पौधा सूख जाता है। जंगली पौधों के अंधाधुंध दोहन और बाद में होने वाली मृत्यु के कारण *कॉमिफोरा वाइटी* के प्राकृतिक वृक्ष क्षेत्र में भारी कमी दर्ज की गई है। इस कारण ओलियो–गम–रेजिन की माँग को विदेशों से आयात करके पूरा किया जा रहा है। जिस वजह से घरेलू बाजार में इसकी कीमत में काफी वृद्धि हुई है और पिछले दस वर्षों के भीतर इसकी कीमत रु 25/कि.ग्रा. से रु. 300/कि.ग्रा. – रु. 500/कि.ग्रा. तक बढ़ गई है ।

मादा वृक्षों की प्रधानता, इन्कम्पैटीबिलिटी प्रतिक्रियाओं की उपस्थिति, कम बीज का बनना, ऐपोमिक्सिस, कम अंकुरण, विनाशकारी दोहन तकनीक, वाणिज्यिक वृक्षारोपण की अनुपस्थिति, धीमी विकास दर, बदलती जलवायु परिस्थितियाँ, सूखे और अत्यधिक दोहन के कारण यह प्रजाति विलुप्त होने के कगार पर पहुँच चुकी है जिस वजह से इसको भारत में लुप्तप्राय वृक्ष प्रजातियों की सूची में शामिल किया गया है। अतः इस प्रजाति में संरक्षण उपाय किये जाने चाहिए जिससे इस पौधा प्रजाति को बचाया जा सके और ओलियो–गम–रेजिन की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके। संरक्षण उपायों के अलावा *कॉमिफोरा वाइटी* की मौजूदा जंगली आबादी पर दबाव को कम करने के लिए इस प्रजाति का वाणिज्यिक वृक्षारोपण भी किया जाना चाहिए।

कॉमिफोरा वाइटी की औसत ऊँचाई 3–4 मीटर होती है। अधिकांश वर्ष यह पौधा पत्ती रहित रहता है और बरसात

के मौसम में इसमें पत्ते देखे जा सकते हैं। इस पौधे में गाँठदार, सुगंधित शाखाएँ होती हैं। इसकी नई शाखाएं हरी और ग्रंथि युक्त व पुरानी शाखाओं का रंग स्लेटी और छाल पेपरी हो जाती है (चित्र–1)। इसकी पत्तियाँ ट्राइफोलिएट, सेसाइल, ओबओवेट और छोटे आकार की होती हैं (चित्र–2)। *कॉमिफोरा वाइटी* एक डाईसियस प्रजाति है और इसमें मादा फूल या नर और उभयलिंगी फूल वाले पौधे पाये जाते हैं। इसके फूल लाल रंग के, छोटे और सेसाइल होते हैं, जिनमें 4–5 सेपल्स, 4 पेटल्स, 8–10 स्टेमेन्स और एक ओवरी होती है (चित्र–3)। इसके फल अंडाकार ड्रूप होते हैं, ये पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं और इनका व्यास 6–8 मि.मी. होता है (चित्र–4)। इस प्रजाति में अक्टूबर–दिसंबर में फूल और फल देखे जा सकते हैं। इस पौधे में सफेद और काले रंग के बीज होते हैं, जिसमें काले बीज अधिक जीवक्षम पाये गये हैं। जीनस कॉमिफोरा मेडागास्कर, एशिया, उष्णकटिबंधीय अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका, भारत और अरब में व्यापक रूप से पाया जाता है। कमिफोरा जीनस की छह प्रजातियाँ, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और मध्य प्रदेश सहित मध्य

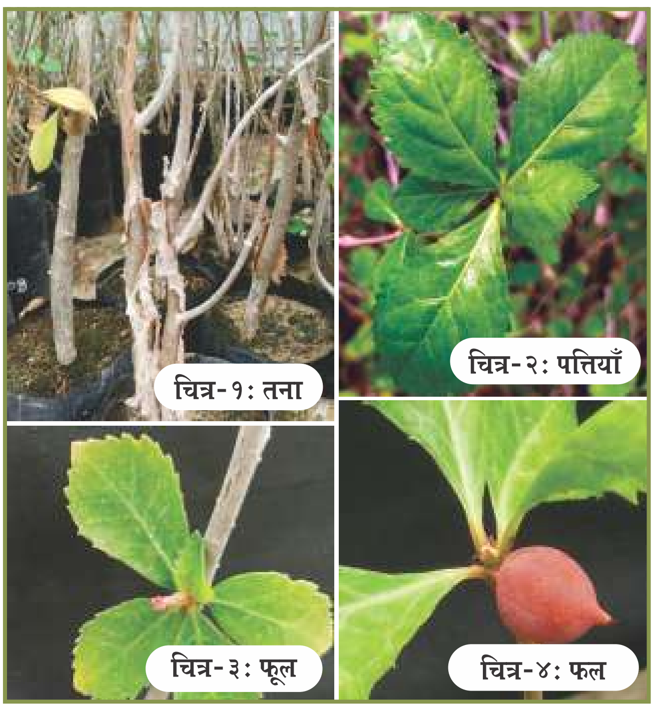

कॉमिफोरा वाइटी

भारत और दक्षिण–पश्चिमी भारत के कुछ हिस्सों में पाई जाती हैं। भारत में *कॉमिफोरा वाइटी* मुख्य रूप से गुजरात और राजस्थान में पाया जाता है, हालाँकि, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक के कुछ हिस्सों में भी इसकी उपस्थिति देखी गई है। इस पौधे की वृद्धि और विकास के लिए 20 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान और 225–500 मि. मी. की औसत वार्षिक वर्षा उत्तम होती है। कॉमिफोरा वाइटी मुख्य रूप से समुद्र तल से 250 से 1800 मि.मी. की ऊँचाई पर, रेतीले या चट्टानी क्षेत्रों में उगता हुआ पाया जाता है। यह प्रजाति कम पानी और लवणीय स्थितियों के लिए प्रतिरोधी होती है और दोमट से बलुई दोमट मिट्टी में 7.5 से 9.0 पीएच में उगती है।

पादप प्रवर्धन

बीजों के माध्यम से *कॉमिफोरा वाइटी* का प्राकृतिक रीजनरेशन बहुत सीमित है। मादा पौधों की प्रबलता और नर पौधों की दुर्लभता के कारण पोलन की उपलब्धता कम होती है जिस वजह से बीज काफी कम बन पाता है। इसके अलावा, बीजों में कठोर एंडोकार्प भी होता है जो गैसीय विनिमय, पानी के प्रवेश और भ्रूण विकास को रोकता है। साथ ही कठोर शुष्क परिस्थितियों के कारण केवल 1.4% बीज ही अंकुरित होते हैं। कठोर शुष्क परिस्थितियों, कम अंकुरण दर (5%) और सीमित बीज सेट के कारण प्राकृतिक रूप से पौधे की स्थापना कम ही पाई जाती है।

पानी की पारगम्यता और गैसीय विनिमय को बढ़ाने के लिए बीजों का स्केरीफिकेशन करते हैं जिसमें बीजों को सैंड पेपर से घिसने के उपरांत 24 घंटे के लिए बहते पानी के नीचे रखा जाता है। इस तकनीक से पौधे के अंकुरण में आसानी होती है। नर्सरी में रोपण स्टॉक तैयार करने के लिए मदर प्लांट (5–8 वर्ष) के बीजों का उपयोग किया जाता है। काले रंग के बीज लगभग 40% अंकुरण दिखाते हैं जबकि पीले–सफेद बीज में अंकुरण दर काफी कम है। इसलिए, फरवरी–मार्च के दौरान मदर प्लांट से केवल काले रंग के बीज एकत्रित किए जाते हैं और मार्च–जून के दौरान अच्छी तरह से तैयार भूमि या पॉली बैग में बोए जाते हैं। चूंकि बहुभ्रूणता इस प्रजाती की एक मुख्य विशेषता है, इसलिए एक ही बीज से कई पौधे निकलते हैं। कम बीज अंकुरण की

भरपाई के लिए प्रति पॉलीबैग दो बीज बोए जाते हैं। बीज 7–10 दिनों के भीतर अंकुरित हो जाते हैं और मानसून में अंकुरों को देखा जा सकता है। क्यारियों में बोए गए बीजों को अंकुरण के बाद पॉलीबैग में स्थानांतरित कर दिया जाता है। दो वर्षों के पौधे 30–50 सेमी. की ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं और खेत में रोपण के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। एक हेक्टेयर भूमि में 2 मीटर X 2 मीटर की दूरी पर रोपण के लिए लगभग 100 ग्राम बीज (काले रंग) की आवश्यकता होती है।

इस प्रजाति के नए पौधों को कृत्रिम तरीकों जैसे स्टेम कटिंग, एयर लेयरिंग और टिश्यू कल्चर तकनीकों का प्रयोग करके भी उत्पन्न किया जाता है। वांछित विशेषताओं वाले रोग मुक्त पौधे का चयन तब किया जाता है जब वह पत्ती रहित अवस्था में होता है। लगभग 30 सेंटीमीटर लंबी और 1.5–2.0 सेंटीमीटर व्यास वाली कलमों को जून के महीने में पर्याप्त नमी वाली मिट्टी में 15 सेंटीमीटर गहरा लगाया जाता है। मानसून आने के साथ ही, 25–50 दिनों के भीतर, कलमों में अंकुरण शुरू हो जाता है। अधिकांश कलमों में, मिट्टी रोपण के 21 दिन के अंदर जड़ निकलने लगती हैं। इसके उपरांत पौधों को पॉली बैग में स्थानांतरित कर दिया जाता है और बरसात के मौसम में खेत में स्थानांतरित किया जाता है। एयर लेयरिंग भी इस प्रजाति के प्रसार का एक महत्वपूर्ण माध्यम है जिसमें पौधे की लगभग 60–90 सेमी लंबी, स्वस्थ शाखाओं का चयन किया जाता है। शाखा की छाल को 5 सेमी चौड़ी रिंग में हटा दिया जाता है और इस हिस्से पर मिट्टी लगाई जाती है और उसके बाद कॉयर फाइबर लगा के एक पट्टी बाँध दी जाती है। नमी बनाए रखने के लिए पट्टी वाले हिस्से में ड्रिप सिस्टम से पानी की आपूर्ति की जाती है। लगभग 2–3 महीनों में इस हिस्से में जड़ें देखी जा सकती हैं। इस अवस्था पर युवा पौधे को मदर प्लांट से अलग कर मिट्टी में लगा दिया जाता है। पर्याप्त मात्रा में रोपण सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए इस प्रजाति में इन विट्रो तकनीकों जैसे औरगैनोजेनेसिस और सोमैटिक भ्रूणजनन भी किया जाता है। इन तकनीकों से इस लुप्तप्राय पौधे के संरक्षण में मदद मिलती है।

पौधा रोपण और प्रबंधन

खेत में पौधा रोपण से पूर्व, खेत की गहरी जुताई की जाती है और कुछ दिनों तक धूप में छोड़ दिया जाता है ताकि स्थायी खरपतवारों का प्रभावी ढंग से प्रबंधन किया जा सके। पौधों को दीमक से बचाने के लिए खेत को तैयार करने के दौरान मिट्टी को 20 किलोग्राम एल्ड्रिन (10%) से उपचारित किया जाता है। इसके बाद 50cm × 50cm × 50cm के गड्ढे, 2m X 2m की दूरी पर खोदे जाते हैं, जिससे 1 हेक्टेयर भूमि में कुल 2,500 पौधे उगाये जा सकें। गड्ढों को 1:1:1:1 के अनुपात में रेत–मिट्टी–फार्म यार्ड खाद से तैयार और 1 टेबलस्पून एल्ड्रिन/गैमाक्सिन या क्लोरपाइरीफोस 20% EC (1.0% a-i) से उपचारित मिश्रण से भरा जाता है। पौधों को बरसात के मौसम (जुलाई/अगस्त) में पॉलीबैग से खेत में स्थानांतरित कर दिया जाता है। कॉमिफोरा वाइटी का रोपण, ब्लॉकों में, इंटरक्रॉप या जैव बाड़ के रूप में किया जा सकता है। यह एक सूखा प्रतिरोधी प्रजाति है और इसके इष्टतम वृद्धि और विकास के लिए सीमित पानी की आवश्यकता होती है। आठ वर्ष की आयु तक गर्मी और सर्दी के मौसम में पौधे को कुल 2–3 सिंचाई दी जाती हैं। बरसात के मौसम में खरपतवार की समस्या के चलते 15–20 दिनों के अंतराल पर निराई की आवश्यकता पड़ती है जबकि सर्दियों के दौरान मासिक अंतराल पर निराई पर्याप्त होती है। पौधे के अच्छे विकास के लिए, आईबीए (10 मिलीग्राम/लीटर) और हेक्सामील (100 ग्राम/पौधे) या एनपीके (75:130:30 ग्राम/पौधे) को हर तीन महीने में एक बार, प्रारंभिक एक वर्ष तक की अवधि के लिए प्रदान किया जाना चाहिए। बाद में हेक्सामील या कम्पोस्ट की एक त्रैमासिक खुराक पौधे की वृद्धि के लिए पर्याप्त होती है। मुख्य और पार्श्व शाखाओं की बेहतर ऊँचाई और परिधि के लिए, 2–4 शाखाओं को छोड़कर पौधे की वार्षिक छंटाई की जानी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रति वर्ष 1–2 निराई महत्वपूर्ण पाई गई है।

कॉमिफोरा वाइटी कई कीटों और बीमारियों से प्रभावित होता है जो इसके उत्पादन को सीमित करने के साथ ही इसके अस्तित्व को भी खतरे में डाल देता है। दीमक इस

पौधे को प्रभवित करने वाला एक अहम् कीट है जो शुष्क मौसम के दौरान पौधे के मुख्य तने में सुरंग बनाता है जिस कारण पत्तियां पीली पड़ने के साथ ही मुरझा जाती हैं और पौधे की मृत्यु हो जाती है। दीमक के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए बिफेंथ्रिन 10% ईसी (2 मिली/लीटर पानी) या बिफेंथ्रिन 8% क्लोथियानिडिन 10% एससी (1 मिली/लीटर पानी) का छिड़काव उपयोगी होता है। यह प्रजाति स्क्लेरोटियम रॉल्फ्सी फंगस के कारण होने वाले कॉलर रॉट से भी प्रभावित होती है। बरसात के मौसम में खेत में लम्बे समय तक पानी का ठहराव इस रोग के पनपने का मुख्य कारण है। डायथेन एम–45 (2 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करके इस रोग का रासायनिक नियंत्रण किया जाता है।

कॉमिफोरा वाइटी लगभग 7–8 वर्ष के बाद, 3–5 मीटर ऊँचा व इसके मुख्य तने का व्यास 3–4 सेमी हो जाता है और इस अवस्था में पौधे की टैपिंग की जाती है। टैपिंग के लिए दिसंबर से फरवरी के दौरान, जमीन से लगभग 40 सेंटीमीटर ऊपर 9–11 सेंटीमीटर का गोलाकार या त्रिकोणीय कट बनाया जाता है। ओलियो–गम–रेसिन का रिसना, टैपिंग के 3–7 दिनों के अंदर शुरू हो जाता है और इसे पूरा होने में लगभग 15–20 दिन लगते हैं। गम–रेसिन कट के नीचे लगे कप में जमा होता है और हवा के संपर्क में आने पर सख्त हो जाता है। इथेफॉन (40 मिलीग्राम) को पौधों की जड़ों में डालने से गम–रेसिन के उत्पादन में काफी वृद्धि होती है। एक मौसम के दौरान गम–रेसिन का संकलन लगभग दो से तीन बार किया जा सकता है और एक परिपक्व पौधा, प्रति मौसम, 200–500 ग्राम रेसिन देता है। संकलन के बाद, रेसिन को उसकी शुद्धता के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है। मोटी शाखाओं से एकत्र किया गया गम–रेसिन प्रथम श्रेणी में आता है। दूसरी श्रेणी की गम–रेसिन आमतौर पर छाल और रेत के साथ मिश्रित होता है और तीसरी श्रेणी के गम–रेसिन में सबसे कम शुद्धता होती है और यह आमतौर पर रेत, कंकड़ व अन्य बाह्य पदार्थों के साथ मिश्रित होता है। कॉमिफोरा वाइटी धीमी गति से बढ़ने वाली प्रजाति है और 7–8 वर्षों के विकास के बाद यह 3–5 मीटर ऊँचाई और 3–4 सेमी. व्यास प्राप्त करती है। पाँच साल के अंदर यह पौधा दोहन के लिए तैयार हो जाता है। टैपिंग दिसंबर से फरवरी के दौरान की जाती है और 8–10 महीनों के दोहन के बाद या तो पूरा पौधा या केवल टैप की गई शाखाएं मर जाती हैं। एक हेक्टेयर भूमि से आठ वर्ष बाद कुल 120–130 कि. ग्रा. गम–रेसिन प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

कॉमिफोरा वाइटी एक आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण लेकिन लुप्तप्राय पौधे की प्रजाति है। आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होने के बाद भी इस प्रजाति को परंपरागत प्रजनन के माध्यम से आनुवंशिक रूप से सुधारने के लिए कोई प्रयास नहीं किए गए हैं। अपने पूरे जीवन चक्र के दौरान यह पौधा कई जलवायु बाधाओं, कीटों और रोगों से प्रभावित होता है। अतः इस प्रजाति को विभिन्न जैविक और अजैविक कारकों से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए नई रणनीतियों को लागू करने की आवश्यकता है। इस प्रजाति की पर्यावरणीय संवेदनशीलता को कम करने में तनाव प्रतिरोधी जीन से आनुवंशिक परिवर्तन एक महत्वपूर्ण तकनीक हो सकता है, हालांकि, माइक्रोप्रोपेगेशन प्रोटोकॉल की कमी और माइक्रोप्रोपेगेटेड पौधों की कम फील्ड स्थापना दर के कारण इस प्रजाति में आनुवंशिक परिवर्तन नहीं किया गया है। इसलिए, इस प्रजाति के लिए एक दक्ष प्रोपोगेशन प्रोटोकॉल विकसित करने की आवश्यकता है जो बड़ी संख्या में रोपण सामग्री का उत्पादन कर न केवल कम प्राकृतिक पुनर्जनन की समस्या को हल करे बल्कि विभिन्न जैविक और अजैविक तनाव के लिए प्रतिरोधी एवं आनुवंशिक रूप से रूपांतरित पौधों के विकास में भी उपयोग की जा सके। कम बीज अंकुरण और पुनर्जनन की समस्या को हल करने के लिए, सिंथेटिक बीज उत्पादन प्रोटोकॉल को भी मानकीकृत किया जा सकता है। इसके अलावा दोहन तकनीक में भी सुधार करने की जरूरत है ताकि उच्च गोंद उपज को सुनिश्चित करने के साथ ही दोहन उपरांत पौधों की मृत्यु को रोका जा सके और साथ ही इस प्रजाति की मौजूदा आबादी के संरक्षण के लिए इन विट्रो गुगलस्टेरोन उत्पादन तकनीकों पर भी काम किया जाना चाहिए।

21 पहाड़ी बांस - पहाड़ी समुदायों की जीवन-रेखा

सुश्री श्वेता भिमटा, सुश्री नीरजा ठाकुर, श्री भुवन वर्मा एवं डॉ. वनीत जिश्टू
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचय

बाँस वनों के साथ–साथ गैर–वन क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण गैर–काष्ठ वन संसाधन है। भारत दुनिया के सबसे बड़े बाँस संसाधनों में से एक है और भारत के वन क्षेत्र में बाँस का हिस्सा लगभग 12.8% है। बाँस के जंगल भारत में लगभग 14 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में फैले हैं। भारत प्रति वर्ष 3.23 मिलियन टन के साथ बाँस उत्पादन में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। बाँस देश भर में व्यापक वितरण वाली सबसे महत्वपूर्ण वानिकी प्रजातियों में से एक है। इसमें भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रमुख योगदान देने की क्षमता है इसलिए इसे "गरीब आदमी की लकड़ी" भी कहा जाता है। कार्बन सीक्वेंसिंग और जैव विविधता संरक्षण में भी बांस अहम भूमिका प्रदान करता है। यह इस ग्रह पर सबसे तेजी से बढ़ने वाले पौधों में से एक है। बाँस घास के Poaceae (Gramineae) परिवार से संबंधित है। दुनिया भर में बाँस के लगभग 75 जेनरा और 1250 प्रजातियाँ मौजूद हैं। भारत में 23 जेनरा से संबंधित बाँस की 125 स्वदेशी और 11 विदेशी प्रजातियाँ हैं। पहाड़ी बाँस समुद्री तल से 1500–3500 मी. की ऊँचाई तक पाया जाता है। विश्व वन संसाधनों पर एफ.ए.ओ. की रिपोर्ट के अनुसार, बाँस आनुवंशिक संसाधनों के मामले में चीन के बाद भारत दुनिया का दूसरा सबसे अमीर देश है। हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी बाँसों की दो प्रजातियों *सिनारुंडीनारिया फाल्काटा (=अरुंडिनारिया फाल्काटा)* और *थमनोकैलामस स्पैथीफ्लोरस (=अरुंडिनेरिया स्पैथिफ्लोरा)* हैं, जिन्हें स्थानीय रूप से 'निर्गाल' या 'नगाल' कहा जाता है। हिमाचल में पहाड़ी बाँस ज्यादातर नमी वाले जंगल में पाए जाते हैं जो स्थानीय लोगों की सामाजिक अर्थव्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बाँस में पुष्पन (फूल आना)

बाँस में फूलों का आना अनियमित होता है तथा यह प्रजाति, उनके आवास एवं वर्षा पर निर्भर करता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि बाँस के पौधे में कुछ समय बाद फूल आने के बाद बीज देने के पश्चात ये बाँस मर जाते है। परंतु कुछ पहाड़ी बाँस की प्रजातियों में बीज देने के बाद भी जीवन पाया गया है।

बांस के झुरमुट

पहाड़ी बाँस के प्रमुख उपयोगः

अन्य बाँस प्रजातियों की तरह पहाड़ी बाँस विभिन्न उपयोगों में लाया जाता है। ग्रामीण परिवारों द्वारा बाँस की वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। कृषि में लगे लगभग 90% से अधिक परिवार दैनिक जीवन में इनका उपयोग करते हैं। इन दोनों बाँस प्रजातियों को अस्थायी झोपड़ियों, चारे ,सजावटी उद्देश्यों और स्थानीय फसलों के लिए छड़ी आदि के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इन्हें मृदा अपरदन को रोकने, भूजल पुनर्भरण एवं भू–स्खलन को स्थिर करने के लिए भी लगाया जाता है। मछली पकड़ने की

छड़ें और 'हुक्का' पाइप बनाने के लिए राज्य से पहाड़ी बाँस का निर्यात किया जाता है। हालांकि इनका प्रमुख स्थानीय उपयोग बास्केटरी में है, जो टोकरी बुनाई करने वाले ग्रामीण परिवारों की आजीविका में महत्वपूर्ण योगदान देता है। पहाड़ी बाँस के प्रमुख उपयोग निम्नलिखित हैं:

टोकरियाँ

एक शंकुकार टोकरी जिसे 'किल्टा' के रूप में जाना जाता है, का उपयोग गाय के गोबर, खाद, ईंधन की लकड़ी, पत्ती चारा, राशन, घास, कपड़े धोने आदि के लिए किया जाता है। गाँव में पुरुषों और महिलाओं की पीठ पर किल्टा होता है, जिसमें विभिन्न प्रकार का भार उठाया जाता है। किल्टे की लंबाई लगभग 75 से.मी. –90 से.मी. होती है। यह पहाड़ी बाँस के टुकड़ों से बुना जाता है और इसे रस्सी/पट्टी की सहायता से पीठ पर उठाया जाता है।

बांस की टोकरियाँ

किल्टा के बड़े संस्करण 'शिक्रहा' का उपयोग सूखी घास, सूखे पत्ते आदि भारी सामग्री के परिवहन के लिए किया जाता है। छोटी टोकरी जिसे 'छाबड़ी' कहा जाता है, उसका उपयोग खेतों में भोजन, फल आदि रखने के लिए किया जाता है।

सेब और सब्जियों को तोड़ने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली 'टोकरी', नाओली/ऊनी, छज भी बाँस से ही बनाई जाती है। इनका उपयोग अनाज के भंडारण के लिए भी किया जाता है। अनाज से भूसे को अलग करने के लिए 'खेड़ी/भोटी' का प्रयोग किया जाता है। चावल, गेहूँ, दाल आदि की तुड़ाई के लिए प्रयोग किया जाने वाला 'शुपा' भी पहाड़ी बाँस से ही बनाया जाता है। कटाई के दौरान पके अनाज, दालें और सरसों को सुखाने के लिए 'चटाई' का इस्तेमाल किया जाता है।

चारा

सर्दियों के दौरान जब अन्य चारा प्रजातियाँ सूख जाती हैं और पत्तियाँ गिर जाती हैं तब पहाड़ी बाँस हरे रहते हैं। उनके पत्ते केवल वसंत की शुरुआत में ही झड़ते हैं, जब अन्य प्रजातियों में पत्तियों का नया प्रवाह शुरू होता है। इसलिए पहाड़ी बाँस के पत्ते चारे की कमी की अवधि के दौरान चारे का महत्वपूर्ण स्रोत हैं और मवेशियों के लिए चारा उपलब्ध कराने के लिए काटे जाते हैं। पहाड़ी बाँस के गुच्छों को आमतौर पर 1–1.5 मीटर की ऊँचाई पर काटा जाता है, जिससे गुच्छों को झाड़ीदार रूप दिया जाता है।

फसलों के लिए छड़ी

ग्रामीण क्षेत्रों में किसान परंपरागत रूप से मटर और टमाटर आदि को नकदी फसल के रूप में उगाते हैं। इन कमजोर तने वाले पौधों को सहारे की जरूरत होती है और इस उद्देश्य के लिए पहाड़ी बाँस छड़ी का प्रमुख स्रोत होते हैं। यदि परिपक्व कलम से छड़ियों को लिया जाता है तो इसका उपयोग दो से तीन मौसमों के लिए किया जा सकता है। आम तौर पर छोटी कलम का उपयोग छड़ी के रूप में किया जाता है और परिपक्व कलम को टोकरी बनाने के लिए काटा जाता है।

पूरे भारत देश में बाँस पर शोध कार्य हो रहा है। इसी कड़ी में "भारतीय वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद (आई.सी.एफ.आर.ई.), देहरादून, व इसके अधीन आने वाले अन्य अनुसंधान संस्थानों के द्वारा "प्रतिपूरक वनरोपण निधि प्रबंधन और योजना प्राधिकरण (CAMPA) के सहयोग से बाँस अनुसंधान कार्य किये जा रहे है। हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला, भी बाँस पर "अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना" (AICRP-2) पर कार्य कर रहा है, जिसके तहत बाँस की बड़े पैमाने पर उत्पादन की विभिन्न तकनीकों पर काम किया जा रहा है। शोध कार्यों से प्राप्त की गई जानकारी आने वाले समय में बाँस उत्पादकों के लिए निश्चित तौर पर फायदेमंद होगी।

22 बसंत (हाईपेरिकम परफोरेटम) : औषधीय जड़ी-बूटी

डॉ. जोगिंद्र सिंह, डॉ. जगदीश सिंह एवं डॉ. रंजीत कुमार
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

हाईपेरिकम परफोरेटम (Hypericum perforatum) हाईपेरिकेसी कुल का सदस्य है, जिसका सामान्य नाम बसंत एवं अग्रेजी नाम सेंट जॉनवर्ट है। जड़ी–बूटी का नाम सेंट जॉन इसलिए रखा है, क्योंकि इसका फूल आमतौर पर जून के अंत में संक्रांति के समय खिलता है और 24 जून को सेंट जॉन्स पर्व दिवस के आसपास काटा जाता है। यह जड़ी–बूटी मुख्यत संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप में पायी जाती है, लेकिन आक्रामक खरपतवार के रूप में यह दुनिया भर के समशीतोष्ण क्षेत्रों में फैल गयी है। भारत में यह हिमालयन क्षेत्र के उप–समशीतोष्ण एवं समशीतोष्ण क्षेत्रों में पायी जाती है। हिमाचल प्रदेश में बसंत, मुख्यतः शिमला और कुल्लू जिलों में 1000 से 2500 मीटर तक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में छायादार और नम स्थानों में उगती है। इस जड़ी–बूटी पर काफी शोध हुआ है, जिसमें इसके जर्मप्लाज्म मूल्यांकन पर भी कार्य किया गया है। औषधीय पौधों का जर्मप्लाज्म मूल्यांकन में मुख्यतः इसके बायोमास और सक्रिय रासायनिक तत्व प्रतिशत के आधार पर किया जाता है।

बसंत जड़ी–बूटी की ऊँचाई एक मीटर तक जा सकती है। इसमे भूरे रंग के तने होते हैं और ऊपरी भाग में शाखाएं होती हैं। पत्ते डंठल रहित, आकार में संकीर्ण और तिरछे तथा 1–2 सेंटीमीटर लंबे होते हैं। शाखाओं पर पत्तियाँ छोटी शाखाओं को ढकती हैं। पत्तियाँ पीले–हरे रंग की होती हैं तथा इसमे पारदर्शी बिंदु होते हैं। जब पत्तियों को प्रकाश के सामने रखा जाता है तो डॉट्स/पारदर्शी बिंदु दिखते हैं, जिससे पत्तियों का "छिद्रित" रूप दिखता है। छिद्र पत्तियों की एक सतह से दूसरी सतह तक नही होते बल्कि इसमें पतली झिल्ली बनी होती है। आकर्षक पीले रंग के फूल 2.5 सेंटीमीटर तक बड़े, पाँच पंखुड़ी और बाह्यदल वाले होते हैं और किनारों में विशिष्ट काले बिंदुओं के साथ सुशोभित होते हैं। यह काले बिन्दु वास्तव में गलैंड होते हैं, जिसमे हाइपेरिसिन नामक का रसायन विद्यमान होता है।

बसंत की कृषिकरण तकनीक भी विकसित की जा चुकी है। इसके बीज अगस्त–सितम्बर माह में पकते हैं, जो दिखने में महीन और काले होते है। जड़ी–बूटी को जड़ भाग तना सहित एवं बीज दोनों रूप से उगाया जा सकता है। बीज को नर्सरी में फरवरी–मार्च में अच्छी तरह तैयार बेड में बोया जाना चाहिए। मार्च–अप्रैल माह में इसके पौधों को खेतों में स्थान्तरित किया जा सकता है। बीज को मार्च महीने में खेतों में सीधे भी बोया जा सकता है। आवश्यकतानुसार पौधे की निराई–गुड़ाई एवं सिंचाई करना जरूरी है। जिन क्षेत्रों में जल–भराव हो, वहाँ पर पौधा विकसित नहीं होता, अतः इस बात का ध्यान रहे कि जिस जगह पौधा उगाया जाना है, वहाँ रेतीली दोमट मिट्टी हो और जमीन में जल–भराव न हो।

यह मूल्यवान औषधीय पौधा, इसके अवसादरोधी (Antidepressant) गुणों के कारण महत्वपूर्ण है। इसके अवसादरोधी गुण इसके पत्तों और फूलों में पाये जाने वाले रासायनिक तत्व हाइपेरिसिन के कारण हैं। इस प्रजाति के फाइटो–फार्मास्युटिकलहाइपेरिसिन का विशेष रूप से हल्के अवसाद के उपचार में काफी उपयोग बढ़ रहा है, जिससे इस जड़ी–बूटी का महत्व भी बढ़ रहा है। अध्ययन के दौरान, यह देखा गया है कि इन गहरे रंग की ग्रंथियों को मसलने पर लाल रंग का तरल पदार्थ निकलता है, जिसमें हाइपेरिसिन पाया गया है। ग्रंथियों और गैर–ग्रंथियों पंखुड़ियों के हिस्से का परीक्षण करने पर यह पाया गया कि

बसंत का तना

बसंत के पुष्प

गैर–ग्रंथियों पंखुड़ियों के हिस्से में सक्रिय रसायनिक हाइपेरिसिन नहीं था, जिससे यह सिद्ध होता है कि मुख्यतः पत्तियाँ और फूलों की ग्रंथियों में हाइपेरिसिन होता है। पारंपरिक रूप से लालतैलीय अर्क का उपयोग घावों के उपचार में किया जाता है। रासायनिक तत्व हाइपेरिसिन का अध्ययन इसके संभावित एंटीबायोटिक गुणों के लिए भी किया जा रहा है।

यद्यपि जड़ी–बूटी काफी महत्वपूर्ण है, परंतु भारत में अभी तक इसकी खेती नहीं की जा रही है, क्योंकि लोग इस पौधे के बारे में अनभिज्ञ हैं। इसके अलावा जड़ी बूटी का बाजार भी विकसित नहीं हुआ है। इसके औषधीय गुणों के देखते हुये जड़ी बूटी के कृषिकरण हेतु सरकार द्वारा प्रयास किए जाने चाहिए।

जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है
तूफ़ानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है
जिसने सोने को खोदा लोहा मोड़ा है
जो रवि के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा
जो जीवन की आग जला कर आग बना है
फ़ौलादी पंजे फैलाए नाग बना है
जिसने शोषण को तोड़ा शासन मोड़ा है
जो युग के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा

— **केदारनाथ अग्रवाल**

23 कटे एवं सूखे बांस छेदक – *क्लोरोफोरस एन्यूलेरिस* फैब. (*कोलिओप्टेरा सेराम्बाइसिडी*) का जीवन चक्र और प्रबंधन

डॉ. के. पी. सिंह एवं श्री मुकेश भट्ट
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्रस्तावना

बाँस पोएसी परिवार से संबंधित एक प्रकार की घास है जो उप परिवार बम्बूसाइडी से सम्बन्धित है। बाँस कई मायनों में लकड़ी के महत्वपूर्ण विकल्पों में से एक है। बाँस उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों में फैला हुआ हैं। इसे 'हरा सोना' और 'गरीब आदमी की लकड़ी' के रूप में भी जाना जाता है। वन अर्थव्यवस्था और भारत की सांस्कृतिक विशेषताओं में बाँस एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में बाँस को कोलिओप्टेरा, होमोप्टेरा, आइसोप्टेरा, लेपिडोप्टैरा और ऑर्थोप्टेरा वर्ग के 212 से अधिक कीटों द्वारा क्षति पहुंचाई जाती है। *क्लोरोफोरस एन्युलेरिस* फैब. (*कोलिओप्टेराः सेरामबाइसिडी*), बाँस की प्रजातियों को क्षति पहुंचाने वाला मुख्य कीट है, जिसे कटे एवं सूखे बाँस का प्राथमिक छेदक भी माना जाता है। इस बोरर के लार्वा बाँस में गैलरी बनाते हैं जो कि कीट कचरे और बाँस के टुकड़ों से भरी होती है। इस बोरर द्वारा क्षतिग्रस्त बाँस की उत्पादकता भी कम हो जाती है जिससे बाँस का आर्थिक मूल्य कम हो जाता है।

जीवन चक्र

नर मादा

वयस्कः *क्लोरोफोरस एन्युलेरिस* के वयस्क की लम्बाई 11–14 मि.मी. होती है, जिसका रंग गेरूआ पीला होता है। ऊपर गोल एवं घुमावदार गहरे भूरे रंग एवं काले रंग के धब्बे होते हैं। एंटीना फिलिफॉर्म आकार की और लम्बाई में 6–7 मि.मी. लम्बी होती है। वयस्क प्रतिवर्ष मई से सितम्बर तक पाया जाता है।

अण्डेः *क्लोरोफोरस एन्युलेरिस* के अण्डों का रंग धूमिल सफेद होता है जो बाद में पीले सफेद हो जाते हैं। आकार में अण्डे अण्डाकार होते हैं और अण्डों की लम्बाई 1.1 मि.मी. एवं चौड़ाई 0.26 मि.मी. होती है। वयस्क मादा अपने जीवन चक्र में 21–23 अण्डे देती है। अण्डों की उष्मायन अवधि (इनक्यूवेसन पीरियड) 12–14 दिन की होती है।

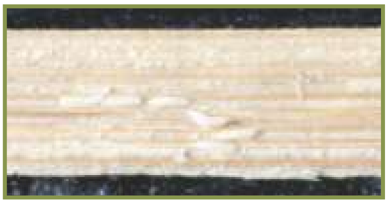

अण्डे

लार्वाः क्लोरोफोरस एन्युलेरिस के परिपक्व लार्वा की लम्बाई 18.0 मि.मी. एवं चौड़ाई 5.0 मि.मी. होती है। लार्वा दूधिया सफेद रंग का होता हैं। परिपक्व लार्वा बाँस के भीतर, बाहरी सतह के पास सुप्त अवस्था में पाया जाता है।

लार्वा

प्यूपाः *क्लोरोफोरस एन्युलेरिस* के प्यूपा की लम्बाई 11 मि.मी. एवं चौड़ाई 4.0 मि.मी. होती है। इसका रंग धूमिल सफेद होता है। जो कुछ समय बाद पीले–सफेद में बदल जाता है। प्यूपा का

प्यूपा

प्यूपीकरण (प्यूपेशन) मार्च–अप्रैल के दौरान एक महीने का होता है। यह बाँस छेदक एक वर्ष में एक जीवनचक्र पूरा करता है।

क्षति की प्रकृतिः बाँस छेदक *(क्लोरोफोरस एन्युलेरिस)* सूखे बाँस के अन्दर अनियमित सुरंगे बनाता है। लार्वा बाँस के अन्दर लगभग 8–9 महीने तक नुकसान पहुँचाता है। लार्वा द्वारा बनाई गई सुरंगों की लम्बाई 40–360 मि.मी. एवं चौड़ाई 3.0–4.0 मि.मी. होती है।

क्षति की व्यापकता एवं तीव्रताः कटे एवं सूखे बाँस छेदक द्वारा सूखे बाँस की आठ प्रजातियों को नुकसान पहुंचाया जाता है। इन आठ प्रजातियों में से *बैम्बूसा पॉलीमोर्फा, बैम्बूसा जिगैन्टियस* एवं *बैम्बूसा बालकोआ* नुकसान की उच्च तीव्रता के अंतर्गत है। जबकि *बैम्बूसा मल्टीप्लेक्स, बैम्बूसा टूल्डा* और *डैन्ड्रोकैलमस स्ट्रिक्टस* हमले की मध्यम तीव्रता के अधीन है। दो प्रजातियां *बी. वल्गेरिस* और *बी. स्पिनोसा* हमले की कम तीव्रता के अधीन है।

बाँस पर छेदक का आक्रमण

कटे और सूखे बाँस छेदक का प्रबंधन

1. **कीटनाशक उपचारः** *सी. एन्यूलेरिस* के प्रबंधन के लिए सम्पर्क कीटनाशक प्रभावी होते हैं जिनका इस बोरर की रोकथाम हेतु उपयोग किया जा सकता है। इस कीट के प्रबंधन हेतु क्लोरोपाइरीफोस 0.02 और 0.04 प्रतिशत कीटनाशक क्रमशः 39.13 और 34.78 प्रतिशत बाँस छेदक का नियंत्रण करते हैं, जबकि इमिडाक्लोप्रिड 0.04 प्रतिशत सांद्रण 26.32 प्रतिशत बाँस छेदक का नियंत्रण करता है।

कीट का नियंत्रण

कीट का प्रबंधन

2. **परिरक्षण (प्रिजरवेटिव) उपचारः** *सी. एन्यूलेरिस* बोरर की रोकथाम हेतु जिबोक 6 प्रतिशत एक प्रभावी परिरक्षक है। इस परिरक्षक की 6 प्रतिशत मात्रा द्वारा उपचार 4 या 7 दिनों तक डिपिंग विधि से उपचार करने पर क्रमशः 73 या 79 प्रतिशत तक बाँस छेदक का नियंत्रण किया जा सकता है।

24 शुष्क क्षेत्र में मिलने वाले कैर फलों के प्रसंस्करण, संरक्षण और पैकेजिंग की नवीनतम विधि एवं उनका पोषक तत्वों पर प्रभाव

डॉ. माला राठौर
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्राचीन काल से शुष्क क्षेत्रों में कैर (*Capparis decidua*) के फल सामाजिक अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभाते रहे हैं। यह जंगल के फल सदियों से सब्जी एवं अचार के रूप में इस्तेमाल किए जा रहे हैं। कैर की कीमत उनके आकार के अनुरूप निर्धारित होती है, छोटे आकार के फल महंगे और बड़े फल सस्ते होते हैं। सूखे फलों की कीमत 500 रुपये से 1000 रुपये प्रति किलो तक होती है। कैर एक झाड़ी है जिस में एक साल में औसतन दो से तीन बार फल लगते हैं। जंगलों एवं खेत से एकत्रित कैर के फल मिश्रित आकार की श्रेणी के होते हैं। कैर की काँटेदार झाड़ियों से फल एकत्रित करके उन्हे हाथों द्वारा अलग किया जाता है। इस कठिन प्रक्रिया में अधिक समय लगता है। कैर फल स्वाद में कड़वे होते हैं। इसलिए सब्जी को अचार बनाने या उपयोग करने से पहले उन्हें पारंपरिक तरीके से संसाधित किया जाता है। वर्ष के अन्य समय में उपयोग के लिए फलों को सुखा कर उनका भंडारण किया जाता है। सुखाने से पहले समान्यतः इन्हें उबाला जाता है और फिर धूप में सुखा लिया जाता है। फिर इनको किसी मिट्टी या धातु के पात्र में सुविधानुसार भविष्य में इस्तेमाल के लिए भंडारण कर लिया जाता है।

कैर फूलों से लदी डलियाँ

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली से वित्तीय सहायता प्राप्त एक प्रोजेक्ट के अंतर्गत कैर फलों के प्रसंस्करण के विभिन्न पहलुओं और इनका उसके पोषक तत्वों पर प्रभाव के ऊपर शोध किया गया। पहले इनको व्यास के आधार पर ग्रेड किया गया। बाजार से अलग अलग नाप के छिद्रों वाली छलनी बनवाकर उनसे फलों को भिन्न–भिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया। इन छलनियों से कैर का वर्गीकरण आसानी एवं जल्दी किया जा सकता है। यह श्रेणियाँ निम्न प्रकार से हैं : श्रेणी 1 एवं 2 में मिट्टी, कंकरीट, सूखे फूल एवं अधिक छोटे कैर होते हैं जिनकी महत्ता न के बराबर होती है। अतः इनका संश्लेषण नहीं किया गया। श्रेणी 3, 6–8 मि.मी., श्रेणी 4, 8–10 मि.मी., श्रेणी 5, 10–12 मि.मी., श्रेणी 6,> 12 मि.मी.।

कैर फलों में मौसम और आकार के साथ पोषक तत्वों में परिवर्तन पाया गया है। अप्रैल सीजन के फल प्रायः कम कड़वे होते हैं। इन में सबसे अधिक शर्करा और वसीय तेल की मात्रा पाई गई है। श्रेणी 4 (6–8 मि.मी.) फल को पोषण की स्थिति के दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ पाया गया। कड़वाहट कम करने की सर्वोत्तम प्रसंस्करण विधि को मानकीकृत करने के लिए ताजा कैर फलों को विभिन्न प्रकार के घोलों में रखा गया और उनकी शर्करा और प्रोटीन का अध्ययन किया गया। यह देखा गया कि सभी घोलों में फलों को भिगोने के 10वें दिन तक शर्करा बढ़ी और फिर धीरे–धीरे इसमें गिरावट आई। जबकि प्रोटीन में भिगोने के पहले दिन से ही गिरावट आने लगी। छाछ में भीगे कैर में शर्करा और प्रोटीन दोनों उच्चतम पाये गए। परिणामों से पता चला कि केवल पानी और नमक में भिगोने की तुलना में, छाछ में भिगोने से

कैर की पोषण गुणवत्ता बनी रहती है। इसके अलावा भिगोने की अवधि केवल 8–10 दिनों के बीच होनी चाहिए।

एकत्रित कैर के फल

फलों को परंपरागत तरीके से सुखाने के परिणामस्वरूप धूल और गंदगी से यह दूषित हो जाते हैं। इस विधि में समय भी ज्यादा लगता है। उबले हुए कैर को सुखाने के लिए दो प्रकार के सोलर ड्रायर (CAZRI द्वारा डिजाइन) का उपयोग किया गया : ईंक्लाइंड (Inclined) और प्रीहीटेड सोलर ड्रायर। सोलर ड्रायर्स में सुखाना प्रभावी था क्योंकि यह तीव्र और आसान तरीका था। इसने कैर की पोषण गुणवत्ता को भी बनाए रखा। यह भी पाया गया कि प्रीहीटेड सोलर ड्रायर में सूखे फलों में ईंक्लाइंड की तुलना में शर्करा और प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है।

इन फलों के भंडारण के लिए सर्वोत्तम कंटेनर का निर्धारण करने के लिए ताकि उनकी पोषण गुणवत्ता भी बनी रहे, विभिन्न कंटेनरों/थैलियों में संग्रहीत फलों का अध्ययन किया गया। रासायनिक विश्लेषण के परिणामों से पता चला कि स्टील कंटेनर में रखे गए फल दो साल के बाद सबसे अच्छी स्थिति में और पोषण में बेहतर रहे, इसके बाद मिट्टी के बर्तन, प्लास्टिक और काँच के कंटेनर इस्तेमाल किए जा सकते हैं। क्लॉथ बैग लंबे समय के भंडारण के लिए जूट बैग की तुलना में बेहतर थे।

कैर फलों से स्वादिष्ट सब्जी (पंचकुटा या त्रिकुटा) की अधिक मांग और बढ़ती रुचि के कारण कैर फलों को दूर दराज के स्थानों पर पहुँचाना पड़ता है। जिसके लिए उपयुक्त विधि पर कार्य किया गया। यह पाया गया की पिलो पैकेजिंग या वैक्यूम पैकेजिंग द्वारा सूखे कैर फलों को लंबे समय तक संरक्षित और सुरक्षित रख आसानी से परिवहन के लिए पैक किया जा सकता है। नाइट्रोजन में फ्लश किए गए नमूनों की तुलना में वैक्यूम पैक नमूनों में उच्च शर्करा और प्रोटीन पाई गई है। इसके अलावा किसी भी नमूने में कोई भी संक्रमण नहीं देखा गया था और वह दो साल से अधिक समय के बाद भी अच्छी स्थिति में थे। हरे फलों को नमक में और सिरका में डाल कर संरक्षित किया जा सकता है। विश्लेषण से पता चला कि सिरका में संग्रहित फलों ने अपने पोषण मूल्य को बनाए रखा। इसलिए यह विधि हरे फलों के संरक्षण के लिए सर्वोत्तम है।

इस तरह से कैर फलों का संग्रह करने का सही समय और मौसम की जानकारी एवं उच्च प्रसंस्करण विधि अपनाकर किसान और व्यापारी दोनों उच्च गुणवत्ता वाले

हरे कैर का नमक और सिरका में संरक्षण

इन शुष्क क्षेत्र के महत्वपूर्ण जंगली फलों का सतत दोहन करते हुये बाजार से उचित मूल्य प्राप्त कर सकेंगे।

आभारोक्ति

लेखिका इस प्रोजेक्ट में काम करने के लिए मिस सोनाली (जे.आर.एफ.) एवं श्री महेंद्र सिंह, (ए.फ.ए.) का आभार व्यक्त करती है। निदेशक, शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, को समस्त सुविधाएं उपलब्ध करवाने के लिए धन्यवाद है। वित्तीय सहायता के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिक विभाग, नई दिल्ली, का भी सहृदय धन्यवाद व्यक्त है।

25 स्थानीय वृक्ष प्रजाति : वन उत्पादकता वृद्धि में अहम योगदान

श्री मनीष कुमार विजय एवं डॉ. ननिता बेरी
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

विश्व के 50 प्रतिशत वन केवल पाँच देशों (रूस, ब्राजील, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन) में पाये जाते हैं। दो–तिहाई (66 प्रतिशत) वन केवल दस देशों (भारत 10 वें स्थान पर आता है) में हैं, लेकिन वे तेज गति से विलुप्त हो रहे हैं। वनों की कटाई कृषि, लॉगिंग, मानव प्रवास और जनसंख्या वृद्धि, निष्कर्षण उद्योग (खनन, तेल और गैस), परिवहन और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं और कस्बों और शहरों के विस्तार से प्रेरित हो रही है। वन पुनः स्थापना एक ऐसे जंगल या परिदृश्य को वापस अपनी मूल स्थिति में लाने का कार्य है जो मानवजनित या प्राकृतिक कारकों से क्षतिग्रस्त हो गया है। यह जलवायु शमन, जैव विविधता संरक्षण, सामाजिक आर्थिक लाभ, खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं सहित कई लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक तंत्र है।

2015 में बॉन चुनौती में शामिल होकर 2020 तक 13 मिलियन हेक्टेयर खराब और वनों की कटाई वाली भूमि को पुनः स्थापना करने की प्रतिज्ञा के साथ, भारत ने 2030 तक अपने पुनः स्थापना लक्ष्य को 26 मिलियन हेक्टेयर में संशोधित किया हैं। 2011 से अब तक, भारत में 9.8 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र की पुनः स्थापना की गई है। हालाँकि, वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में वन संरक्षण और परिदृश्य बहाली के लिए लगभग 140 मिलियन हेक्टेयर की क्षमता है जो 2040 तक 3 से 4.3 बिलियन टन ऊपर–जमीन कार्बन को स्टोर कर सकती है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर बीज और पौधों की आपूर्ति प्रणालियों को मजबूत करने की आवश्यकता है। बड़े पैमाने पर वन कार्यक्रम, जिनका उद्देश्य अवक्रमित वन भूमि का पुनर्वास करना और वाटरशेड संपत्तियों में सुधार करना है, प्रशंसनीय हैं, परन्तु संभावित चिंता यह है कि इनमें से अधिकांश पहलें विदेशी प्रजातियों पर निर्भर रही हैं। दक्षिण पूर्व एशिया में बड़े पैमाने पर वनीकरण कार्यक्रमों में मुख्य रूप से *मेलीना अर्बोरिया*, पाइन, स्विटेनिया प्रजाति, यूकेलिप्टस प्रजाति, *टेक्टोना ग्रैंडिस* और बबूल प्रजाति के वृक्ष लगाये जा रहे हैं, क्योंकि इन प्रजातियों के बीज और नर्सरी प्रोटोकॉल और सिल्विकल्चरल उपचार आसानी से उपलब्ध हैं। नतीजतन, उष्णकटिबंधीय वनों की कटाई के प्रयासों में लगाए गए सभी पेड़ों का 80 प्रतिशत विदेशी प्रजातियों का होता है। विदेशी प्रजाति मोनोकल्चर के कारण प्राकृतिक आवास की स्थिति, जल संतुलन और पोषक चक्र बदल सकते हैं। इसके अतिरिक्त, विदेशी प्रजातियां कभी–कभी कीटों और बीमारियों के बड़े प्रकोप की चपेट में आ सकती हैं। उक्त समस्या को नजर में रखते हुए बड़े पैमाने पर वनीकरण और परिदृश्य बहाली परियोजनाओं के लिए स्थानीय वृक्ष प्रजाति को प्राथमिकता दिया जाना चाहिए।

वन पुर्नस्थापना में स्थानीय वृक्ष प्रजातियों का महत्व

देशी पौधे वे हैं जो प्राकृतिक रूप से उस क्षेत्र में पाए जाते हैं जिसमें वे विकसित हुए। स्थानीय वृक्ष प्रजातियाँ, परिभाषा के अनुसार, स्थानीय जलवायु, अपक्षय गर्मी, ठंड, सूखा और बाढ़ में पनपने के लिए विकसित हुए हैं। विदेशी वृक्ष प्रजातियाँ, देशी वृक्ष प्रजातियों की आबादी के लिए खतरा बन जाता है क्योंकि आप उनके प्रसार को नियंत्रित नहीं कर सकते। पिछली शताब्दी में, शहरीकरण ने पारिस्थितिक रूप से उत्पादक भूमि को खराब किया है और इसे विदेशी वृक्ष प्रजातियों के साथ बदल दिया है। विदेशी वृक्ष प्रजातियों के आक्रमण को दुनिया भर में प्राकृतिक पौधों

के समुदायों को बदलने और जैव विविधता के नुकसान के मुख्य कारणों में से एक माना जाता है। कई आक्रामक विदेशी प्रजातियों ने कई क्षेत्रों में सफलतापूर्वक अपने को स्थापित कर लिया है। जैव विविधता के संरक्षण के लिए देशी पौधों के आवास को बहाल करना महत्वपूर्ण है। स्थानीय वृक्ष प्रजातियों को लगाने के कई कारण हैं:–

1. स्थानीय वृक्ष प्रजातियाँ हमें हमारी भूमि की विरासत से जोड़ते हैं। खासतौर पर, मूल वनस्पतियाँ क्षेत्र के भूगर्भिक काल के अनुसार विकसित हुई हैं, और पीढ़ियों से उन्होंने क्षेत्र के मूल लोगों की जीवन शैली, आहार और औषधीय प्रथाओं को प्रभावित किया है।
2. स्थानीय वृक्ष प्रजातियाँ क्षेत्रीय परिदृश्य को पुर्नस्थापित करती हैं। यह हमारे स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र के समग्र स्वास्थ्य में योगदान करती हैं। चूंकि वे इस जलवायु में रहने के लिए विकसित हुई हैं, इसलिए देशी पौधों की प्रजातियाँ संसाधनों पर कम माँग रखती हैं।
3. स्थानीय वृक्ष प्रजातियाँ, देशी वन्यजीवों, तितलियों से लेकर पक्षी एवं भालू तक को भोजन और आश्रय प्रदान करती हैं। वन्यजीव प्रजातियों को उनके पर्यावरण में पनपने की आवश्यकता होती है। वे अपने जीवन चक्र को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए देशी पौधों पर भरोसा करते हैं। अन्य जानवर, जैसे हिरण, शिकारियों से सुरक्षित रहने के लिए स्थानीय वनस्पतियों द्वारा प्रदान किए गए आवरण पर निर्भर करते हैं। परिदृश्य से एक निश्चित देशी पौधे को हटाने से उस पौधे पर जीवनयापन करने वाले कीट को हटा दिया जाएगा, जो बदले में उस कीट को खाने वाले पक्षी को मिटा सकता है। एक प्रजाति का नुकसान पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित कर सकता है।
4. स्थानीय वृक्ष, क्षेत्रीय मौसम की भीषण परिस्थितियों से बचे रहते हैं और प्राकृतिक रूप से स्थानीय रोगों के प्रति प्रतिरोधी होते हैं, जिससे कृत्रिम कीटनाशकों और शाकनाशियों की आवश्यकता कम हो जाती है।
5. स्थानीय वृक्ष, स्थानीय इलाके और पीएच स्तर के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं, जो उन्हें गर्मी के महीनों में बहुत अधिक गर्मी से बचाते हैं या सर्दियों की लंबी ठंड की अवधि के दौरान अधिक कठोर बना सकते हैं।
8. स्थानीय वृक्ष हमारे स्थानीय जलवायु के अनुकूल होते हैं, इसलिए इन पौधों की बेहतर वृद्धि के लिए उर्वरकों को लागू करना आवश्यक नहीं है।
9. स्थानीय वृक्ष न केवल देशी वन्यजीवों के लिए बल्कि संपत्ति मालिकों के लिए भी फायदेमंद होते हैं। उन्हें गैर–देशी पौधों की तुलना में बहुत कम देखभाल की आवश्यकता होती है।
10. कई स्थानीय वृक्ष अपने गैर–देशी विकल्पों की तरह ही सौंदर्य की दृष्टि से आकर्षक हैं। सौंदर्य और आध्यात्मिक रूप से, देशी पौधे हमारे स्थान की भावना को बढ़ाते हैं।

स्थानीय वृक्षारोपण में समस्यायें

वनसंवर्धन ज्ञान और पुनर्जनन की कमी के कारण देशी वृक्षारोपण करना आसान नहीं है। कई स्थानीय ट्री नर्सरी स्थानीय वृक्षों को प्राथमिकता नहीं देते हैं। स्थानीय वृक्षप्रजातियों के उत्पादन और आपूर्ति को बढ़ाने की सबसे बड़ी चुनौती अच्छी गुणवत्ता और आनुवंशिक रूप से विविध देशी बीजों की उपलब्धता में कमी होना है। इस समस्या का बड़ा कारण खंडित राष्ट्रीय बीज प्रणाली है जो विभिन्न प्रजातियों और उत्पत्ति के अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की पर्याप्त मात्रा में वितरित करने में असमर्थ हैं। अधिकांश देशों में कई कारणों से अच्छी गुणवत्ता वाले स्थानीय वृक्षों के बीज आसानी से उपलब्ध नहीं होते हैं, जिनमें शामिल हैं:

- बीज गुणवत्ता के महत्व के बारे में जागरूकता की कमी।
- वनों की आनुवंशिक गुणवत्ता अक्सर खराब हो जाती है क्योंकि सबसे अच्छी गुणवत्ता वाले पेड़ों को काटा गया है, बीज संग्रह के लिए केवल खराब गुणवत्ता वाले पेड़ उपलब्ध होते हैं।

- वृक्ष बीज क्षेत्र में संग्राहकों, बिचौलियों और अन्य श्रमिकों के पास सीमित प्रशिक्षण और बीज को ठीक से उत्पादन, संभालने और भण्डारण करने के लिए अपर्याप्त सुविधाएं हैं।
- गुणवत्ता वाले बीज की उपलब्धता और उपयोग में सुधार के लिए सरकारी संस्थायें और सामुदायिक समूह के बीच सहयोग की कमी।
- उपलब्ध वृक्ष, बीज की उत्पत्ति और गुणवत्ता के संबंध में पर्याप्त जानकारी (किसान और एनजीओ स्तर को) प्रदान करने के लिए कोई लेबलिंग या प्रमाणक प्रणाली मौजूद नहीं है।
- वन बीज क्षेत्र में में वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति का बहुत कम समावेश।

उपर्युक्त सूचीबद्ध समस्याओं का समाधान करने हेतु शोधकर्ताओं, किसानों और गैर सरकारी संगठनों की क्षमता को अपने स्वयं के वृक्ष बीज स्रोतों को ठीक से एकत्र करने, प्रबंधित करने और मूल्यांकन करने के लिए तैयार होना होगा। उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान ने इस तरह की कई परियोजनाओ में कार्य किया है, और यहाँ संबधित विषय पर कई प्रशिक्षण आयोजित किये जाते रहे हैं।

निष्कर्ष

स्थानीय वृक्ष प्रजातियों का रोपण पारिस्थितिकी तंत्र, अर्थव्यवस्था और वन्य जीवन के लिए एक अच्छा माध्यम है। अच्छे देशी वनस्पति प्रबंधन से भूमि के मूल्य में सुधार, उत्पादन परिणामों में वृद्धि और परिचालन लागत को कम करके भूमिधारकों के लिए आर्थिक परिणामों में सुधार किया जा सकता है। स्थानीय वृक्ष प्रजातियों का चयन करते समय गुणवता के साथ ही, पौधे के स्रोत की भौगोलिक उत्पत्ति और आनुवंशिक विविधता का ज्ञान होना जरूरी है। पौधों के स्रोतों में आनुवंशिक विविधता को बनाए रखने से, पौधे बदलते जलवायु और पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल हो सकेंगे। कम आनुवंशिक विविधता वाले पौधों की आबादी रोगजनकों और पर्यावरणीय तनावों के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकती है, और विदेशी आक्रामक प्रजातियों के साथ कम प्रतिस्पर्धी हो सकती है। साथ ही एक राष्ट्रीय बीज पद्धति बनाने की आवश्यकता है जो सही समय पर उत्तम गुणवता का बीज उपलब्ध करवा सके।

मैं जीवन में कुछ कर न सका!

जग में अँधियारा छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,
मैंने जलकर दी आयु बिता,
पर जगती का तम हर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

अपनी ही आग बुझा लेता,
तो जी को धैर्य बँधा देता,
मधु का सागर लहराता था,
लघु प्याला भी मैं भर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

बीता अवसर क्या आएगा,
मन जीवन भर पछताएगा,
मरना तो होगा ही मुझको
जब मरना था तब मर न सका!
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

— **हरिवंशराय 'बच्चन'**

26 मैदा लकड़ी (लिटसिया) : अगरबत्ती उद्योग हेतु महत्वपूर्ण प्रजाति

श्री डी. पी. झारिया एवं डॉ. ननिता बेरी
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

परिचयः मैदा लकड़ी को मैदा, मदनी, मधुरा आदि नामों से जाना जाता है। मैदा लकड़ी (लिटसिया) की लकड़ी का उपयोग फर्नीचर एवं खिलौने बनाने में किया जाता है। इसको ''माउंटेन पीपर'' के नाम से भी जाना जाता है। मैदा लकड़ी का वृक्ष 10–15 मी. ऊँचा होता है। मैदा लकड़ी के वृक्ष छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग तथा पंचमढ़ी, सतपुड़ा, पातालकोट के जंगलों में बहुतायत से पाये जाते हैं। मैदा लकड़ी के औषधीय गुणों के कारण तस्करों ने इस पेड़ को दुर्लभ बना दिया है। सरकार ने इस पेड़ की छाल निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

मैदा लकड़ी का वृक्ष

सामान्य आवासः मैदा लकड़ी के पेड़ पूर्वोत्तर के राज्यों जैसे असम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, मेघालय के वर्षा वनों एवं मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र के शुष्क पतझड़ी वनों में पाये जाते हैं।

वैश्विक वितरणः भारत, चीन, इंडोनेशिया, ताइवान एवं दक्षिण एशिया के कुछ भागों में।

पत्तियाँः मैदा लकड़ी की पत्तियाँ चिकनी एवं सुगन्धित होती हैं। पत्तियों में सगंध तैल होता है जिसके कारण पत्तियाँ सुगन्धित होती हैं। मैदा लकड़ी में पत्तियाँ एकान्तर एवं विपरीत क्रम में होती हैं। पत्ती की औसत लम्बाई 20–25 सेमी. एवं चौड़ाई 5–10 सेमी. होती है।

छालः मैदा लकड़ी की छाल भूरे रंग की होती है। छाल वजन में भारी होती है एवं इसकी मोटाई 0.5 से 1.0 सेमी. तक होती है। मैदा लकड़ी की छाल औषधीय प्रयोग में काम आती है।

फूलः मैदा लकड़ी के फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। फूल छोटे–छोटे एवं गुच्छे में लगते हैं एवं अक्टूबर–नवम्बर में पुष्पन होता है।

फलः मैदा लकड़ी के फल चार (चिरोंजी) के समान गोल होते हैं। कच्चे फल हरे रंग के होते हैं तथा पकने पर हल्के लाल तथा जामुनी रंग के हो जाते हैं। फल का पल्प मीठा होता है एवं अंदर गुठली होती है। फल के पल्प को पक्षी बहुत चाव से खाते हैं। मैदा लकड़ी में दिसम्बर से जनवरी के बीच फल लगते हैं।

बीजः मैदा लकड़ी के बीज गोल चार (चिरोंजी) के बीज के सामान सफेद रंग के होते हैं, बीज के अंदर गिरी होती है, जिसमें तेल पाया जाता है, इस तेल का उपयोग साबुन एवं अगरबत्ती में खुशबू लाने में किया जाता है एवं इसका उपयोग रासायनिक उद्योग में विटामिन ''ए'' के संश्लेषण में भी किया जाता है। चीन में प्रतिवर्ष 500–1500 टन तेल का उत्पादन किया जाता है।

लकड़ीः मैदा लकड़ी की लकड़ी जलाऊ एवं इमारती दोनों प्रकार की होती है इससे फर्नीचर एवं खिलौने बनाये जाते हैं।

जड़ेंः मैदा लकड़ी की जड़ें जमीन में काफी अंदर तक होतीं हैं, जो मिट्टी के कटाव को रोकती हैं तथा भूमिगत जल को संचित करने में मदद करती हैं।

परागणः मैदा लकड़ी में परागण भौंरों, कीटों तथा मधुमक्खियों द्वारा होता है।

बीज का प्रसारः मैदा लकड़ी के बीज मीठे होने के कारण बीज का प्रसार पक्षियों के द्वारा होता है।

बीज संग्रहणः मैदा लकड़ी के वृक्ष में अक्टूबर–नवंबर में पुष्पन होता है तथा दिसम्बर–जनवरी में फल लगते हैं। मैदा लकड़ी में बीज एक साथ परिपक्व नहीं होते, कुछ बीज परिपक्व हो जाते हैं, कुछ बीज कच्चे रहते हैं इसलिए साप्ताहिक तौर पर बीज का संग्रह करना पड़ता है। फलों को मसलकर बीज निकालते हैं।

बीज भण्डारणः बीजों को अच्छी तरह सुखाकर भंडारित करना चाहिए, जिससे बीजों में नमी न पहुँचे।

अंकुरण क्षमताः मैदा लकड़ी के बीजों की अंकुरण क्षमता बहुत अच्छी होती है, अच्छी तरह पके हुए बीजों की अंकुरण क्षमता 90–95 प्रतिशत तक होती है।

रोपणी में पौधे तैयार करनाः रोपणी में पौधे तैयार करने के लिए मिटटी खाद एवं रेत का 3:2:1 के अनुपात में मिश्रण बनाकर पॉलिथीन बैग या रुट ट्रेनर में भरना चाहिए, तथा मई–जून में बीज की बुवाई करना चाहिए। बीज को 10x1 मी. के बेड में सीधे बुवाई भी कर सकते हैं। बेड दो प्रकार के बनाए जाते हैं (1) रिज बेड– जहाँ दलदली भूमि होती है वहाँ पर रिज बेड बनाये जाते हैं ताकि बीज सड़ें नहीं। (2) संकन बेड– जहाँ पर शुष्क जमीन होती है वहाँ संकन बेड में बीजों की बुवाई की जाती है। इस प्रकार मैदा लकड़ी को रोपणी में तैयार कर वृक्षारोपण हेतु पौधे तैयार करते हैं। पानी की समुचित सिंचाई व्यवस्था करना चाहिए। पौधा तैयार होने पर पौधे की अच्छी तरह सिंचाई एवं निराई करना चाहिए। मैदा लकड़ी के नए पौधे में पत्ती–छेदक कीट का प्रकोप होता है, जो पत्तियों को खाने लगता है इससे बचाव के लिए M–45 तथा बाविस्टीन नामक दवा का 5 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

वृक्षारोपणः मैदा लकड़ी का वृक्षारोपण करने के लिए सबसे पहले ग्रीष्म काल में पौधरोपण क्षेत्र का चुनाव कर प्रारूप बनाना चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी 2 मी. तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 3 मी. रखना चाहिए तथा 30x30x30 सेमी. के गड्ढे खोदने चाहिए, गर्मी में गड्ढे को खाली छोड़ देना चाहिए, जिससे गड्ढे में उपस्थित हानिकारक कीड़े–मकोड़े तथा दीमक नष्ट हो जायें। वृक्षारोपण करने से पहले खोदे गए गड्ढों में मिटटी, सड़ी हुई गोबर खाद एवं रेत का 3:2:1 के अनुपात में तैयार किया हुआ मिश्रण भरना चाहिए तथा रोपणी में तैयार किये पौधों को रोपित करना चाहिए। किसान भाई अपने खेत की मेड़ों पर भी मैदा लकड़ी के वृक्षों को लगा सकते हैं। गाँवों में ग्रामपंचायत की शासकीय भूमि एवं तालाब के किनारे मैदा लकड़ी के वृक्षों को रोपित किया जा सकता है।

मैदा लकड़ी के उपयोगः मैदा लकड़ी के पेड़ की छाल अतिसार, पेटदर्द, में बहुत उपयोगी होती है। चोट, मोच एवं हड्डी टूटने से होने वाले दर्द में, सूजन, गठियावात सायटिका एवं कमर–दर्द में मैदा लकड़ी के पेड़ की छाल के पॉउडर तथा आमा हल्दी के पॉउडर की सामान मात्रा लेकर चूर्ण बना लें तथा 1 चम्मच चूर्ण दूध के साथ 10 दिनों तक लेने से लाभ मिलता है।

मैदा लकड़ी का विनाश विहीन विदोहनः मैदा लकड़ी का पेड़ धीरे–धीरे विलुप्त होने की कगार पर पहुँच गया है, इसका प्रमुख कारण है, तस्कर पेड़ की पूरी छाल एक साथ निकाल लेते हैं जिससे पेड़ के फ्लोयम (जल वाहिनी नलिकाएं) नष्ट हो जाती हैं तथा वृक्ष सूख जाता है। इसके बचाव के लिए एक बार में वृक्ष की एक तरफ की छाल को निकलना चाहिए तथा दुबारा दूसरे वर्ष दूसरे तरफ की छाल को निकलना चाहिए, जिससे फ्लोयम एक साथ नष्ट न हों तथा पेड़ जीवित रह सके। इस प्रकार विलुप्त होने की कगार पर पहुंचे मैदा लकड़ी के पेड़ को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है, इसके अतिरिक्त इस पौधे को किसानों के खेत की मेढ़ पर लगाकर भी संरक्षित किया जा सकता है।

27 महुआ के फूल-आय का अतिरिक्त व सतत स्रोत

श्री निखिल वर्मा, डॉ. फातिमा शिरीन, श्री कौशल त्रिपाठी एवं श्री नीरज प्रजापति
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

महुआ गर्म इलाकों में पाए जाने वाला एक विशेष प्रजाति का पेड़ है। मुख्यतः यह प्रजाति शुष्क उष्णकटिबंधीय वनों में पाया जाता है। उत्तर व मध्य भारत के वनों व गांवों में यह वृक्ष बहुतायत में मिलता है। शहरो में रहने वाले लोग भले ही इस वृक्ष की खूबियों से अंजान हों, पर ग्रामीण व आदिवासी लोग इस पेड़ के महत्व को बखूबी जानते हैं। वैसे तो इस पेड़ के सभी भाग उपयोग में आते हैं लेकिन इसका फूल एक अद्भुद फूल है जिसको विविध उपयोग हैं। महुआ के फूलों का इस्तेमाल देशी शराब बनाने में होता हैं। इसके अलावा महुआ के फूल विभिन्न औषधीय गुणों से भी भरपूर हैं। अल्सर, ब्रोंकाइटिस व त्वचा रोगों में इसके फूलों का उपयोग बहुत लाभप्रद होता है। इसके फूलों के अन्दर अत्यंत मीठा रस भरपूर मात्रा में होता है। शुगर की मात्रा ज्यादा होने के कारण इसके फूल का इस्तेमाल भारतीय मिठाईयों जैसे कि बर्फी, खीर, हलवा व मीठी पूड़ी बनाने में किया जाता है। वर्तमान में चॉकलेट व लड्डू बनाने में भी महुआ के फूलो का इस्तेमाल किया जा रहा है। महुआ के पेड़ों का अत्यधिक महत्त्व होने के कारण इस पेड़ को ट्राइबल ट्री ऑफ इंडिया का दर्जा दिया जा सकता है।

वनों और वन से जुड़े गांवों में मार्च का महीना शुरू होते ही महुआ के पेड़ों से फूलों की रिमझिम बारिश आरम्भ हो जाती है। शुरुआत के दिनों में थोड़ी ही मात्रा में फूल गिरते हैं पर धीरे धीरे प्रतिदिन स्वतः गिरने वाले फूलों की संख्या बढने लगती हैं । लगभग दस दिन बाद फूलों का प्राकृतिक रूप से गिरना प्रचुर मात्रा में होता है जो सामान्यतः दो सप्ताह तक चलता है और फिर धीरे धीरे प्रतिदिन फूलों की संख्या में गिरावट आती है। पूर्ण रूप से परिपक्व महुआ के एक पेड़ से प्रतिदिन आठ से दस किलो तक फूल गिरते हैं। संग्राहक फूलों को भूमि से इकठ्ठा करने के बाद एक सप्ताह तक इसको सुखाते हैं और फिर सूखे हुए फूलों को स्थानीय बाजार में 40 रूपए किलो तक बेचते हैं।

हालांकि संग्राहक गिरे हुए फूलों को आसानी से बीनने के लिए, भूमि पर पड़े सूखे पत्तों को जला देते हैं। इस आग के कारण नए–नए व छोटे महुआ व अन्य प्रजाति के पौधे जलकर नष्ट हो जाते हैं जोकि चिंता का विषय है। वनाग्नि से होने वाले व्यापक और दूरगामी नुकसान के प्रति ग्रामीणों को जागरूक करना अतिआवश्यक है।

महुआ के पेड़ो के नीचे कपड़े या नेट की कवरिंग फैला दी जाये तो सारे फूल इसी में गिरेंगे जिससे कि ग्रामीणों को संग्रहण करने में आसानी होगी और समय की भी बचत होगी साथ ही फूलों की उच्च गुणवत्ता बनी रहेगी।

आर्थिक लाभ जो महुआ से प्राप्त होता है, उसका महत्व इसलिए भी ज्यादा है क्योकि महुआ के फूल व फल उस समय संग्रह होते है जिस समय न तो खरीफ का मौसम होता है न तो रबी का। ऐसे समय पर महुआ के वृक्ष हमें प्राकृतिक रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। चूंकि महुआ के फूलों व बीजों को संग्रहण करने में बड़ी संख्या में महिलायें भी भाग लेती हैं अतः ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में इस लघु वन उपज का महत्वपूर्ण योगदान है। महुआ के वृक्ष अपने–आप में अपार संभावनाओ को समेटे हुआ है। अगर महुआ के उपज पर आधारित कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाये तो ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे और साथ ही इससे जुड़े परिवारों की आय में भी बढ़ोत्तरी होगी।

28 'बेखल' (प्रिंसेपिया यूटिलिस रॉयल) : एक अल्पज्ञात महत्वपूर्ण वन औषधि

श्री पंकज कुमार, डॉ. वनीत जिश्टू एवं सुश्री मीनाक्षी
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

आदिकाल में मानव ने अवश्य ही वनस्पतियों का उपयोग अपने जीवन में खाने के लिए तथा विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए किया है। कई वनस्पति प्रजातियों के उपयोग का वर्णन ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषदों, महाभारत व पुराणों में किया गया है। पेड़–पौधे हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन्हीं पेड़–पौधों मे से कुछ ऐसे भी हैं, जिनके बारे में लोगों का ज्ञान बहुत कम है परंतु ऐसे पेड़–पौधों का उपयोग आम जिंदगी में कहीं न कहीं अवश्य किया जाता है। ऐसे पौधे **अल्पज्ञात वन पादप** की श्रेणी में आते हैं। हिमाचल प्रदेश में पाये जाने वाले कुछ पौधे भी अल्पज्ञात वन पादप की श्रेणी में हैं, इनमें से एक पौधा है, **"बेखल"।**

बेखल का वानस्पतिक नाम *प्रिंसेपिया यूटिलिस रोयल* (*Prinsepia utilis* Royle) है। ये रोजेसी (Rosaceae Family) कुल से संबन्धित है। बेखल के पौधे को सामान्यतः एक कंटीली झाड़ी के रूप में देखा जाता है। ये मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड मे मिल जाता है। इसे बारह महीने उगने वाली हरी–भरी झाड़ियों के रूप मे पाया जाता है। बेखल एक औषधीय पौधा है, जिसकी जड़ों, पत्तियों और जामुनी रंग के फलों के उपयोग से पारंपरिक रूप से दांतों के दर्द व इसके बीज के तेल से घुटनों के दर्द में आराम मिलता है। *प्रिंसेपिया यूटिलिस* रॉयल के पत्ते और बीज का तेल गठिया, दर्द एवं हड्डियों के विकार और जोड़ों की बीमारियों के लिए उपयोग किया जाता है।

औषधीय गुण

बेखल के बीज से निकलने वाला तेल एक औषधि माना जाता है। इसका उपयोग गठिया और माँसपेशियों में दर्द के इलाज के रूप में किया जाता है। खाँसी और जुकाम के उपचार में भी तेल माथे पर लगाया जाता है। इसके बीज का पेस्ट दाद या एक्जिमा के इलाज लिए लेप के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके फलों का उपयोग चीनी चिकित्सा में भी किया जाता है।

बेखल

चुनौतीपूर्ण संसाधन जरूरतों को पूरा करने के लिए और कम होते पेड़–पौधों को फिर से बचाने के लिए, हमें अल्पज्ञात पौधों की प्रजातियों की एक पुनर्जीवित विश्वव्यापी जाँच की आवश्यकता है। भा.वा.अ.शि.प. एवं इसके अधीन संस्थानों में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं।

29 थुम : बीज एवं कृत्रिम पुनर्जनन तकनीक

श्री पीताम्बर सिंह नेगी
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचय

थुम उत्तर–पश्चिम हिमालयी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण पर्णपाती वृक्ष है। इस वृक्ष का वानस्पतिक नाम *Fraxinus Xanthoxyloides* (Wall. ex G. Don) DC. है एवं सामान्य नाम ''अफगान ऐश'' है। यह वृक्ष Oleaceae परिवार से संबंध रखता है। स्थानीय भाषा में इसे 'थुम', 'हनुज', 'सेंजल' और 'अंगा' इत्यादि नाम से भी जाना जाता है। यह वृक्ष उत्तर–पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र के आंतरिक शुष्क क्षेत्रों में

थुम का वृक्ष

समुद्र तल से 1800–3500 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाता है। इस वृक्ष का भौगोलिक वितरण अफगानिस्तान से ले कर बलूचिस्तान, जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश और कुमाऊँ तक है। भारत वर्ष में यह वृक्ष मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश के किन्नौर और लाहौल एवं स्पीति जिले में, जम्मू–कश्मीर, लद्दाख तथा उत्तराखण्ड के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। यह एक मध्यम आकार का पेड़ है जिस की ऊँचाई 10–15 मीटर तक होती है।

इस वृक्ष की छाल का रंग भूरा होता है। किन्नौर जिले के कम ऊँचाई वाले सम शुष्क क्षेत्रों में यह एक वृक्ष के रूप में पाया जाता है परंतु अधिक ऊँचाई वाले शीत मरुस्थल क्षेत्रों में यह झाड़ीनुमा आकार ग्रहण कर लेता है। इसके पेड़ सूखे एवं पथरीली जमीन पर बिखरे हुए भी पाए जा सकते हैं, जहाँ वर्षा बहुत कम होती है। इस वृक्ष में नये पत्ते अप्रैल के महीने में पनपने लगते हैं। वृक्ष में फूल पत्तों से पहले पनपते हैं। इस वृक्ष में बीज मई के महीने में विकसित होने शुरू हो जाते हैं तथा अक्तूबर के महीने तक बीज पक जाते हैं। हिमाचल प्रदेश के शुष्क–शीतोष्ण एवं शीत मरुस्थल क्षेत्रों में थुम सामाजिक और पारिस्थितिकी की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण वृक्ष है। यह वृक्ष शुष्क–शीतोष्ण एवं शीत मरुस्थल क्षेत्रों में मृदा संरक्षण कार्यक्रम के लिए उत्तम प्रजाति है। हिमाचल प्रदेश के किन्नौर और लाहौल – स्पीति जिले में इस की लकड़ी का उपयोग घरों में जलाने के लिए किया जाता है। स्थानीय लोग इस पेड़ की टहनियों और शाखाओं का उपयोग कृषि उपकरण के हैंडल तथा खेतों एवं बागीचों के चारो ओर बाड़ लगाने के लिए करते हैं। यह एक उत्तम चारा प्रदान करने वाली प्रजाति है। थुम के पत्ते एवं शाखाओं का उपयोग पशुओं के चारा के लिए किया जाता है। इस के तने की छाल का उपयोग 'अमची' स्वास्थ्य प्रणाली में विभिन्न रोगों के उपचार के लिए भी

किया जाता है। स्थानीय लोग इस की छाल का काढ़ा बना कर शरीर की आंतरिक बीमारी के उपचार के लिए करते हैं। इस वृक्ष का प्राकृतिक पुनर्जनन इस के प्राकृतिक क्षेत्र में विभिन कारणों से बहुत कम है। इस के प्राकृतिक आवास में कम संख्या होने का प्रमुख कारण इस के बीजों में पायी जानी वाली सुप्तता भी है जिस के कारण इस के बीज अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी अंकुरित नहीं हो पाते हैं। सुप्त अवस्था के कारण पौधशाला में इस के बीज 1–2 वर्ष में अंकुरित होते हैं। हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में थुम के बीजों के विभिन्न पहलुओं जैसे बीज संग्रह, बीज हैंडलिंग और प्रसंस्करण, बीज भंडारण और जीवितता, बुवाई पूर्व उपचार इत्यादि विषयों पर शोध कार्य करने के उपरांत इस के बीज एवं कृत्रिम पुनर्जनन तकनीक द्वारा पौधे तैयार किये हैं जिस का विवरण इस प्रकार है:

1. बीज संग्रह: थुम के बीजों को अक्तूबर महीने के दूसरे पखवाड़े के दौरान सीधे वृक्षों से एकत्र करें क्योंकि इस अवधि के दौरान तक अधिकांश बीज पक जाते हैं और बीजों की अंकुरण प्रतिशतता भी अधिकतम पायी गयी है। हालांकि सितम्बर महीने के दौरान भी किसी–किसी वृक्षों में कुछ बीज भूरा रंग धारण किए होते हैं, परंतु बीज के आंतरिक भ्रूण पूरी तरह विकसित नहीं होते हैं। इन बीजों में भ्रूण की अपरिपक्वता के कारण अंकुरण क्रिया नहीं हो पाती है।

इन के बीजों को सीधे वृक्षों से एकत्र करें और जमीन में गिरे बीजों को संग्रह करने से बचा जाना चाहिए। बीज संग्रह के दौरान अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि संग्रह के दौरान अपरिपक्व और परिपक्व बीज आसानी से मिल जाते हैं। इसलिए, हमेशा अपरिपक्व बीजों को लेने से बचें जो कि हरे रंग के होते हैं। उचित समय पर संग्रह किए परिपक्व बीज का रंग भूरा होता है। बीज संग्रह के दौरान बीज एकत्रण करने की तारीख, स्थान का नाम, ऊँचाई और भौगोलिक निर्देशांक जैसी जानकारी को रिकॉर्ड करें और जिस पात्र में बीज रखा हो, उस में लेबल बना के चस्पा लें। बीज संग्रह के लिए प्रशिक्षित कर्मियों/संग्राहकों की सेवाओं को लिया जाना चाहिए क्योंकि जिन क्षेत्रों में यह वृक्ष उगते हैं वे बहुत कठिन और दुर्गम हैं।

2. बीज हैंडलिंग और प्रसंस्करण: थुम के बीजों को जंगल से संग्रह के तुरंत बाद एक सप्ताह तक छाया में सुखाना चाहिए। इस के बाद अशुद्ध एवं अपरिपक्व बीजों को शुद्ध बीजों से अलग किया जाता है। उपरोक्त प्रक्रिया को अमल में लाने के बाद इस के बीजों में 95 प्रतिशत तक की शुद्धता प्राप्त की जा सकती है। बीजों में प्रसंस्करण एवं सुखाने के बाद क्रमशः 8.28% और 8. 22% तक नमी होती है।

3. बीज आकृति विज्ञान: थुम के समारा का रंग हल्का भूरा होता है तथा इस का आकार चपटा एवं एक तरफ नुकीला होता है। इस के समारा का आकार 2.78–4.50 से.मी. x 0.50–0.80 से.मी. तक होता है। इस का बीज समारा के भीतर होता है। इस के बीजों का रंग हल्का भूरा तथा आकार 1.16–1.28 से.मी. x 0.22 x 0.28 से.मी. होता है। एक किलो ग्राम में लगभग 35,000 बीज पाये जाते हैं।

4. बीज भंडारण और जीवितता: थुम के बीज रूढ़िवादी (Orthodox Nature) प्रवृत्ति के होते हैं। इस के बीजों के भण्डारण के दौरान जीवितता को बनाए रखने के लिए कम नमी और तापमान की आवश्यकता होती है। इस के बीजों की जीवितता को बनाए रखने के लिए भण्डारण के दौरान 0–50°C तापमान और 5–10% नमी की मात्रा बनाए रखनी चाहिए। इस के बीजों को 50°C से कम तापमान और 5–10% नमी की अवस्था पर वायुरोधक कंटेनरों में रेफ्रिजरेटर में एक साल तक भंडारण के बाद 80% जीवितता और दो साल तक भंडारण के बाद भी 70% तक जीवितता बनी रहती है। बीजों का भंडारण खुले वातावरण में न करें क्योंकि खुले वातावरण में भंडारित बीजों की जीवितता एक वर्ष तक 68% रहती है और 1 वर्ष तक 20% एवं 2 वर्ष में पूरी तरह से समाप्त हो जाती है।

थुम का बीज

5. बुवाई पूर्व उपचारः थुम के बीजों में दो तरह की सुप्तावस्था (सीड डॉर्मेंसी) पायी जाती है। पहला इस के बीजों के बाहरी आवरण में अंकुरण रोधी रसायन पाया जाता है जिस कारण इस का बीज अंकुरित नहीं हो पाता है। दूसरा इस के बीजों के आंतरिक भ्रूण में सुप्तावस्था पायी जाती है। इस लिए इस के बीजों को बुवाई पूर्व उपचार की जरूरत होती है। इस के बीजों की सुप्तावस्था को तोड़ने के लिए सर्वोत्तम विधि जिबरेलिक एसिड का उपचार है। इस विधि में इस के बीजों को 1500 ppm जिबरेलिक एसिड के घोल में 24 घंटे के लिए रखा जाता है। इस के उपरांत बीजों को इस घोल से अलग कर अंकुरण के लिए रखा जाता है। इस तरह उपचारित करने से इस के बीजों में 74% तक अंकुरण एक महीने के भीतर दर्ज किया जाता है। इसलिए, यह सिफारिश की जाती है कि अधिकतम अंकुरण प्राप्त करने के लिए इस के बीजों को 1500 ppm जिबरेलिक एसिड का उपचार दिया जाए। इस के अतिरिक्त इस के बीजों को रेत के साथ मिला कर सर्द मौसम में 45–60 दिनों की अवधि के लिए गड्ढों में रखा जाता है। 45–60 दिनों की अवधि पूरी होने के बाद बीजों को रेत से अलग कर के नर्सरी में बीजाई की जाती है। इस तरह बीजों को उपचारित करने से इस के बीजों में 45% तक अंकुरण एक महीने के अंदर दर्ज किया जाता है। इसलिए, यह सिफारिश की जाती है कि अधिकतम अंकुरण प्राप्त करने के लिए इस के बीजों को 1500 ppm जिबरेलिक एसिड का उपचार दिया जाना चाहिए। यह भी देखा गया कि बुवाई पूर्व उपचार के दौरान

नर्सरी में रोपण स्टॉक

पानी में तैरते बीजों की तुलना में पानी में डूबे बीज अच्छा अंकुरण दर्ज करते हैं। इसलिए जो बीज बुवाई पूर्व उपचार के दौरान पानी में तैरते हैं, उन्हे बीजाई के लिए प्रयोग में न लिया जाये और केवल जलमग्न बीज का उपयोग किया जाना चाहिए।

6. कृत्रिम पुनर्जनन तकनीकः थुम के पौधों को नर्सरी में कृत्रिम पुनर्जनन तकनीक द्वारा तैयार करने का विवरण इस प्रकार है।

(I) **बीजों की बुवाईः** थुम के बीजों की बुवाई पौधशाला में 2:1:1 के अनुपात में मिट्टी, रेत और गोबर की खाद के मिश्रण से बनी क्यारियों में करें। बीजों को पौधशाला की क्यारियों में 10 से.मी. x 15 से.मी. की दूरी पर कतार में 1.5 से.मी. की गहराई पर बीजाइ करें। अंकुरण बेड में नमी बनाये रखने के लिए फव्वारे की सहायता से हर दूसरे दिन पानी दें। अंकुरण अवस्था के दौरान नर्सरी बेड में बीजों को निर्जलीकरण से बचाएं क्योंकि बीजों का निर्जलीकरण अंकुरण बेड में द्वितीयक सुप्तता को प्रेरित करता है। जिस कारण बीज अंकुरित नहीं हो पाते हैं। इस लिए बीजों में नमी बनाए रखने के लिए बार–बार सिंचाई करें।

(ii) **बीज अंकुरण एवं पौधों का विकास** : थुम के बीजों का अंकुरण नर्सरी में उचित उपचार देने के बाद लगभग 1 महीने में होता है। इस के अंकुरों का विकास नर्सरी में शुरुवात में धीमा होता है इसके बाद नन्हें पौधों का विकास सुचारु रूप से हो जाता है। इस के पौधे अंकुरण के एक साल बाद 10–15 से.मी. की ऊँचाई नर्सरी में धारण करता है तथा दो साल बाद 25–30 से.मी. की ऊँचाई प्राप्त करता है। इस के पौधे दो साल बाद रोपण क्षेत्र में लगाने के लिए तैयार हो जाते है। थुम एक उत्तम चारा प्रधान करने वाली प्रजाति है। इस की संख्या प्राकृतिक वास में निरंतर कम होती जा रही है।

हिमाचल प्रदेश के आंतरिक शुष्क एवं शीत मरुस्थल क्षेत्रों में इस वृक्ष प्रजाति को रोपित कर इसका संरक्षण किया जा सकता है। इस के अलावा रोपण क्षेत्रों में इस के पौधों को अधिक से अधिक रोपित कर के स्थानीय समुदायों की चारा की जरूरतों को भी पूरा किया जा सकता है।

30 परावैद्युत तापनः लकड़ी को सुखाने के लिए पर्यावरण के अनुकूल एक विकल्प

श्री रोहित शर्मा एवं श्री राकेश कुमार
काष्टविज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

काष्ठ एक जैविक सामग्री है, जिसमें सेल्यूलोज, हेमिसेल्यूलोज, लिगनिन और सत्व शामिल हैं। किसी भी उपयोग से पहले ताजा या गीली लकड़ी को ठीक से सुखाया जाना चाहिए। परावैद्युत पदार्थ एक बहुत अच्छा कुचालक है जो उच्च आवृत्ति के कारण गर्म हो जाता है तथा इस तकनीक का उपयोग कई क्षेत्रों जैसे भोजन, कपड़ा उद्योग और दवा में किया जा रहा है। हालांकि परावैद्युत तापन को उपयोगी तकनीक के रूप में जाना जाता है, फिर भी काष्ठ उद्योग में इसका उपयोग लगभग नगण्य है परावैद्युत तापन काष्ठ उद्योग में तापन के पारंपरिक तरीके की तुलना में कम बिजली का उपयोग करता है, जिससे यह पर्यावरण के अनुकूल तकनीक हो सकती है। इसके अलावा, काष्ठ को सुखाने के लिए काष्ठ आधारित अवशिष्ट को जलाने से पर्यावरण के लिए हानिकारक गैसें उत्पन्न होती हैं। परावैद्युत ताप ऐसे कारकों को भी कम करता है।

परिचय

परावैद्युत पदार्थ एक विसंवाहक पदार्थ है जो विद्युत क्षेत्र लगाने से ध्रुवित हो जाता है। धातुओं के विपरीत उनके माध्यम से कोई धारा प्रवाह नहीं होता है, जहाँ मुक्त इलेक्ट्रॉन या शिथिल रूप से बँधे हुए इलेक्ट्रॉन के माध्यम से प्रवाह होता हैं। इसके अतिरिक्त, परावैद्युत ध्रुवीकरण तब होता है जब विद्युत आवेश उनके औसत संतुलन की स्थिति से हट जाते हैं। ध्रुवीय अणुओं में द्विध्रुवीय आघूर्ण होते हैं, जब ये अणु विद्युत क्षेत्र के संपर्क में आते हैं तो वे क्षेत्र की दिशा में संरेखित होते हैं।

जब विद्युत क्षेत्र दोलन करता है, तो ये अणु विद्युत क्षेत्र के साथ खुद को संरेखित रखने के लिए हिलना–डुलना और घूमना शुरू कर देते हैं। विद्युत क्षेत्र की दिशा में परिवर्तन के साथ अणु भी अपनी दिशा को विपरीत दिशा में बदलते हैं और इस घटना को ''परावैद्युत आवर्तन'' कहा जाता है।

अणु का तापमान अणुओं की गतिज ऊर्जा पर निर्भर करता है। जब परावैद्युत घुमाव होता है, तो यह अणुओं की गतिज ऊर्जा को बढ़ाता है जिसके परिणामस्वरूप अंततः अणुओं का तापमान बढ़ जाता है। जब ये अणु एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं और टकराते हैं, तो इसके परिणामस्वरूप

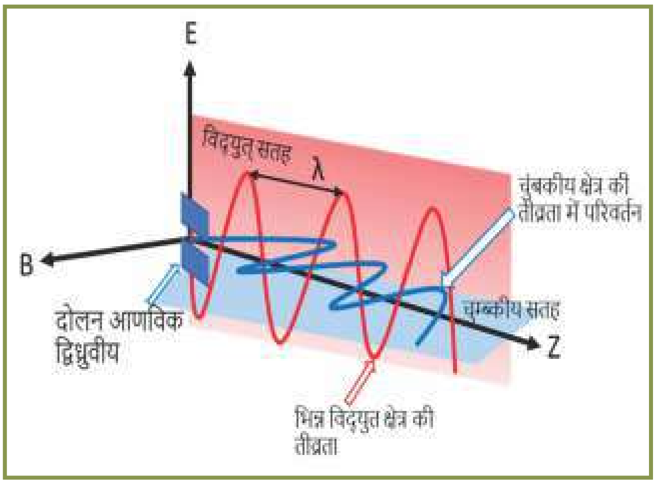

विद्युत चुम्बकीय तरंगों का प्रसार

पदार्थ के दूसरे भाग में ऊर्जा का स्थानांतरण होता है और घर्षण ऊर्जा से पदार्थ गर्म हो जाता है। इस प्रणाली में तापन उच्च आवृत्तियों वाले विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों का उपयोग करके किया जाता है। परावैद्युत तापन की कार्यप्रणाली विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र की आवृत्ति और तरंग दैर्ध्य पर निर्भर करती है।

सूक्ष्म तरंग और रेडियो आवृत्ति (आरएफ) विद्युत चुम्बकीय विकिरण परावैद्युत सामग्री को गर्म करने के लिए

सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली उच्च आवृत्ति तरंगें हैं। रेडियो आवृत्ति और सूक्ष्म तरंग विकिरण आवृत्ति क्रमशः 3kHz से 300 MHz और 300 MHz से 300 GHz होती है। आर.एफ. और सूक्ष्म तरंग के लिए तरंग दैर्ध्य क्रमशः 1 मी. – 100 किमी., और 1 मिमी. – 1 मी. तक होता है

इन विद्युत चुम्बकीय तरंगों की परावैद्युत सामग्री को गर्म करने की क्षमता ने उनके अनुप्रयोगों के दायरे को बढ़ाया है। तापन प्रदान करने की उनकी क्षमता के कारण उन्हें काष्ठ विज्ञान के क्षेत्र में संभावित रूप से उपयोग किया जा सकता है।

काष्ठ उद्योग में परावैद्युत तापन का संभावित उपयोग

काष्ठ एक कार्बनिक पदार्थ है, जिसमें मुख्य रूप से सेल्यूलोज, हेमिसेल्यूलोज, लिगनिन और सत्व शामिल हैं। काष्ठ में द्वितीयक चयापचयों की उपस्थिति के कारण जीवित पेड़ लकड़ी के क्षय अभिकर्तृत्वों जैसे कवक और कीटों के खिलाफ प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। एक बार पेड़ कटने के बाद यह कवक और कीटों के खिलाफ अपनी प्रतिरोधक क्षमता खोने लगता है। ताजी कटी हुई लकड़ी में नमी की मात्रा 150% –200% होती है जिसे किसी भी उपयोग के लिए लकड़ी को रखने से पहले 12–8% तक कम करना पड़ता है।

लकड़ी में जल दो रूपों में पाया जाता है, मुक्तजल और बाध्यजल। मुक्तजल कोशिका गुहाओं में उपलब्ध जल है और रासायनिक रूप से लकड़ी से बँधा नहीं है। इसे हटाना आसान है और लकड़ी के गुणों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। बाध्यजल रासायनिक रूप से लकड़ी से बंधा होता है और कोशिका भित्ति में मौजूद होता है। लकड़ी से बाध्यजल हटाने से लकड़ी के गुणों में बहुत सारे बदलाव आते हैं। जैसे–जैसे लकड़ी से पानी कम होता जाता है, एक समय ऐसा आता है जब कोशिका गुहा पूरी तरह से खाली हो जाती है, जबकि कोशिका की भित्ति पूरी तरह से बाध्यजल से संतृप्त हो जाती है। इस बिंदु को तंतु संतृप्ति बिंदु (एफ.एस.पी.) कहा जाता है। जब लकड़ी एफ.एस.पी. से नीचे सूखने लगती है या जब लकड़ी से बाध्य जल निकलने लगता है, तो कोशिका भित्ति में सिकुड़न के कारण लकडी सिकुड़ने लगती है। इसके अलावा, जब सूखी लकड़ी कोशिका भित्ति में पानी सोख लेती है तो वह फूल जाती है। नमी के संपर्क में आने पर लकड़ी का यह सिकुड़न/सूजन अंतिम उत्पाद में समस्या पैदा करता है। सिकुड़न/सूजन अलग–अलग लकड़ियों में अलग–अलग होती है और यहाँ तक कि लकड़ी की असम दिग्वर्ती (एन. आइ.सोट्रोपी) प्रकृति के कारण एक ही लकड़ी की अलग–अलग दिशाओं में भी सिकुड़न/सूजन अलग–अलग होती है। विभिन्न लकड़ियों में जटिल आंतरिक रचना होती है इसलिए किसी भी उपचार से पहले इस पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। लकड़ी की कुछ प्रजातियाँ जिनका रासायनिक परिरक्षकों से उपचार करना आसान होता है, पारगम्य लकड़ी कहलाती हैं। जिन प्रजातियों का उपचार करना मुश्किल होता है उन्हें अपारगम्य काष्ठ के रूप में जाना जाता है। लकड़ी की पारगम्यता द्रव पदार्थ के प्रवाह पर निर्भर करती है इसलिए कम पारगम्यता वाली लकड़ी को रसायनों से उपचारित करना मुश्किल है। इन रसायनों का उपयोग लकड़ी के जीवन काल को बढ़ाने के लिए किया जाता है और लकड़ी के संरक्षक कहलाते हैं। काष्ठ उद्योग में तापन की विभिन्न तकनीकों की आवश्यकता होती है। ठोस लकड़ी के मामले में, सुखाने के उद्देश्य के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जबकि संयोजित काष्ठ के मामले में सुखाने के साथ–साथ चिपकाने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

परावैद्युत तापन का उपयोग करके लकड़ी को सुखाना अभी प्रचलन में नहीं है, लेकिन पारंपरिक तरीकों के मुकाबले यह एक अच्छा विकल्प हो सकता है क्योंकि इसमें पारंपरिक सुखाने के तरीके की तुलना में अच्छी गुणवत्ता के साथ तेजी से सूखने की संभावना है। उच्च नमी अंश प्रवणता के मामले में यह तकनीक बहुत लाभकारी हो सकती है। लकड़ी की उच्च आवृत्ति द्वारा सुखाने की प्रक्रिया में लागत कम लगती है क्योंकि यह बहुत समय बचाता है और इसमें कम मानव संसाधन शामिल होते हैं। उत्पाद की गुणवत्ता भी साधारण

भट्ठे का उपयोग करके सुखाई गई लकड़ी की तुलना में बेहतर होता है। अपवर्तक लकड़ी प्रजातियों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए परावैद्युत तापन पूर्व उपचार उपयोगी होते हैं और परिचार में मुश्किल लकड़ी की प्रजातियों के लिए औद्योगिक स्तर पर आसानी से उपयोग की जा सकती है। परावैद्युत उपचार लकड़ी के प्रतिधारण और प्रवेश गुणों में सुधार करके लकड़ी के उपचार में सुधार करता है। ये सभी प्रक्रियाएं उच्च ऊर्जा खपत की माँग करती हैं। यद्यपि वायु द्वारा सुखाना और सौर भट्टियाँ लकड़ी सुखाने के लिए पर्यावरण के अनुकूल विकल्प हैं, लेकिन वे बहुत समय लेने वाले हैं इसलिए उनका उपयोग वांछित नहीं है, क्योंकि औद्योगिक उत्पादन समयबद्ध है। इस परिदृश्य में पर्यावरण के अनुकूल और समय कुशल विकल्प की आवश्यकता है इसलिए परावैद्युत तापन इस कमी को पूरा कर देता है।

काष्ठ उद्योग में सूक्ष्म तरंग का उपयोग

जैसा कि हम जानते हैं कि सूक्ष्म तरंग की आवृत्ति 300 MHz से 300 GHz तक और तरंग दैर्ध्य 1 मिमी. से 1 मीटर तक होती है। सूक्ष्म तरंग का उत्पादन मैग्नेट्रोन द्वारा औद्योगिक और घरेलू उद्देश्यों के लिए किया जाता है। सूक्ष्म तरंग सामग्री को द्विध्रुवीय आवर्तन प्रणाली द्वारा गर्म करते हैं। सामान्य पारंपरिक सुखाने की विधि की तुलना में सूक्ष्म तरंग तापन प्रणाली के कई फायदे हैं। पारंपरिक भट्टे द्वारा सुखाने में अधिक समय सबसे बड़ी चिंता का विषय है। हवा में सुखाने और सौर भट्टे द्वारा सुखाने में लकड़ी के सुखाने का समय कई महीने हो सकता है। जबकि अन्य भाप गरम या इलेक्ट्रिक भट्ठा कुछ लकड़ियों के लिए दो से तीन सप्ताह का समय ले सकता है, जिनकी अपनी जटिल शारीरिक रचना के कारण सूखना कठिन होता है। ऊष्मा के स्रोत के रूप में लकड़ी के अवशिष्ट पर चलने वाला पारंपरिक भट्ठा अवशिष्ट के जलने के कारण पर्यावरण में हानिकारक गैसों को छोड़ता है।

पारंपरिक तरीके से सुखाई गई लकड़ी में कई दोष विकसित हो जाते हैं और ये दोष उत्पाद के मूल्य को कम कर देते हैं। सुखाने के दौरान अधिक देखभाल करने से दोषों को कम किया जा सकता है जिससे सुखाने का समय बढ़ जाएगा और यह श्रमसाध्य भी हो जाएगा। पारंपरिक विधि में सुखाने का कार्य प्रवाहकीय ताप विधि द्वारा किया जाता है। इसमें लकड़ी की सतह से और धीरे–धीरे बाद की परतों से नमी गायब होने लगती है। इस मामले में नमी की गति नमी प्रवणता (मोइस्चरग्रेडिएंट) के कारण होती है। कभी–कभी तेजी से सूखने के कारण लकड़ी की बाद की परतों में नमी प्रवणता (मोइस्चरग्रेडिएंट) अधिक हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक दोष जैसे, तड़कना, मुड़ना आदि का विकास होता है।

सूक्ष्म तरंग द्वारा सुखाने की प्रणाली में, संवहन ताप विधि का उपयोग किया जाता है। सुखाने की शुरुआत लकड़ी के अन्तर्भाग से होती है और धीरे–धीरे सतह पर चली जाती है। इसमें तापन उन बिंदुओं पर होता है जहां पानी के अणु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सुखाने की इस प्रणाली में नमी प्रवणता (मोइस्चर ग्रेडिएंट) कोई भूमिका नहीं निभाती है इसलिए लकड़ी में दोष विकसित होने की संभावना कम हो जाती है। यह लकड़ी को सुखाने का एक पर्यावरण हितैषी तरीका हो सकता है, क्योंकि इसे पारंपरिक विद्युत तापन भट्ठे की तुलना में कम बिजली की आवश्यकता होती है। जब परिरक्षक उपचार की बात आती है तो लकड़ी की प्रजातियां जिन्हें सुखाना मुश्किल होता है, उनका परिरक्षक उपचार करना भी मुश्किल होता है। कम पारगम्य लकड़ी की आंतरिक रचना के कारण हो सकती है या प्राकृतिक अवरोधों के कारण हो सकती है। सूक्ष्म तरंग विकिरण जब उच्च तीव्रता से लकड़ी में प्रवेश करते हैं तो वे कभी–कभी लकड़ी की संरचनाओं को नुकसान पहुँचाते हैं और इन प्राकृतिक बाधाओं को तोड़ देते हैं। इसके परिणामस्वरूप लकड़ी की पारगम्यता बढ़ जाती है। इसलिए, सूक्ष्म तरंग पूर्व उपचार की मदद से लकड़ी के परिरक्षक के प्रवेश और प्रतिधारण में सुधार किया जाता है।

किसी भी क्षेत्र का वैश्वीकरण एक महत्वपूर्ण पहलू है। लकड़ी के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं का आयात और निर्यात करते समय उचित सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। लकड़ी कवक, कीट और अन्य जीवों

सूक्ष्म तरंग प्रणाली द्वारा सुखाने की मशीन अ) वाहक पट्टा प्रणाली ब) कक्ष प्रणाली

की वाहक हो सकती है। इसलिए, उत्पाद के निर्यात या आयात से पहले पादप–स्वच्छता की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। अन्य सामग्री को पैक करने के लिए लकड़ी आधारित संवेष्टन (पैकेजिंग) सामग्री का उपयोग किया जा रहा है, इसलिए इस संवेष्टन (पैकेजिंग) सामग्री को भी ठीक से साफ करने की आवश्यकता है। वर्तमान में आई.एस.पी.एम. संख्या 15 मानक के अनुसार लकड़ी की पादप स्वच्छता के लिए मिथाइल ब्रोमाइड का उपयोग करके धूमन का उपयोग किया जा रहा है। MeBr (मिथाइल ब्रोमाइड) बहुत खतरनाक और गैर पर्यावरण हितैषी रसायन है, इसलिए बेहतर विकल्पों की तलाश करना आवश्यक हो जाता है और सूक्ष्म तरंग तापन उनमें से एक है। पादप स्वच्छता के लिए सूक्ष्म तरंग का उपयोग आई.एस.पी.एम. 15 संख्या में भी वर्णित किया गया है। हालाँकि, पारंपरिक तापन का उपयोग पादप–स्वच्छता के उद्देश्य के लिए भी किया जा सकता है, लेकिन इसमें बहुत समय लगता है और अधिक समय तक लकड़ी को गरम रखना लकड़ी के गुणों को खराब कर सकता है। परावैद्युत तापन के मामले में, हमें लकड़ी के उपचार के लिए मापदण्ड तय करने की आवश्यकता होगी। यह एक बेहतरीन विकल्प है और इसमें पादप स्वच्छता के लिए वैश्विक स्तर पर मिथाइल ब्रोमाइड के उपयोग को बदलने की क्षमता है।

काष्ठ उद्योग में रेडियो आवृत्ति तरंगों का उपयोग

रेडियो आवृत्ति तरंगों की आवृत्ति 3 किलोहर्ट्ज से 300 मेगाहर्ट्ज और तरंग दैर्ध्य 1 मीटर से 100 किमी. होती है। इस विकिरण का ताप तंत्र भी द्विध्रुवीय घूर्णन गति के आधार पर होता है। यह कमोबेश सूक्ष्म तरंग तापन प्रणाली के समान है, हालांकि दोनों में थोड़ा अंतर है। आर.एफ. आसानी से अधिक गहराई में प्रवेश कर सकता है। इसके बावजूद कुछ लकड़ी की प्रजातियाँ जो सूखने में आसान होती हैं और किसी भी प्रकार के सुखाने के दोष विकसित नहीं होती हैं, इस तकनीक का उपयोग करके उन्हें सुखाया जा सकता है। संयोजित काष्ठ उद्योग के क्षेत्र में इस तकनीक की एक बड़ी भूमिका है। संयोजित काष्ठ में हम विभिन्न गर्म प्रणाली से चिपकने वाले रसायन का उपयोग करते हैं जिन्हें उपचार के लिए विशेष तापमान की आवश्यकता होती है। यह गर्म प्रेस में दबाने के दौरान प्राप्त किया जा सकता है। गर्म प्रेस में सामान्यतयाः दो प्लेटें होती हैं, वे आवश्यक तापमान तक गर्म होती हैं और इन प्लेटों के बीच संयोजित काष्ठ को दबाया जाता है। बोर्ड की मोटाई आसंजक के चिपकने की दर को प्रभावित करती है। जैसे–जैसे बोर्ड की मोटाई बढ़ती है, चिपकने की दर घटती जाती है और यह सबसे पतले बोर्ड के लिए उच्चतम होती है। आर.एफ. द्वारा तापन से इस समस्या को समाप्त किया जा सकता है क्योंकि आर.एफ. तापन संवहनी प्रकार के तापन पर आधारित है। मोटे संयोजित काष्ठ के बोर्ड के मामले में, अन्तर्भाग में गर्मी ठीक से नहीं जाती है और संयोजित काष्ठ का चिपकना कठिन हो जाता है क्योंकि इसमें प्रवाहकीय तापन मुश्किल हो जाता है। आवश्यक तापमान प्राप्त करने के लिए, हमें

अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जो वांछनीय नहीं है, क्योंकि यह संयोजित काष्ठ के अन्य गुणों को प्रभावित कर सकता है। इस परिदृश्य में आर.एफ. तापन तकनीक काफी मददगार है, क्योंकि आरएफ सामग्री को संवहनी विधि से गर्म करता है, इसलिए इस मामले में सामग्री की मोटाई कोई भूमिका नहीं निभाती। इस प्रकार वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के रूप में आर.एफ. तापन ऊष्मीय उपचार की तुलना में विभिन्न लाभ प्रदान करता है। इनमें शामिल हैं, तेजी से परिचार का समय, उच्च दक्षता, उत्पादन दर, और एक समान तापन। आर.एफ. भी पादप स्वच्छता में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पादप स्वच्छता के लिए सूक्ष्म तरंग और रेडियो आवृत्ति तरंगों के प्रदर्शन पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और परिणाम से पता चलता है कि दोनों तकनीकों का उपयोग इस उद्देश्य के लिए किया जा सकता है। यह मिथाइल ब्रोमाइड (या पारंपरिक तापन) का विकल्प हो सकता है। बढ़ती पर्यावरणीय चिंताओं के कारण, लकड़ी के उपचार करने वाले उद्योगों के लिए परावैद्युत ताप का उपयोग महत्वपूर्ण है। परावैद्युत तापन तकनीक पारंपरिक उद्योग में उत्पाद विकास के क्षेत्र में नए निविष्ट लाती है और ऊर्जा की बचत भी प्रदान करती है।

काष्ठ उद्योग में परावैद्युत ताप का भविष्य और विस्तार

देश के काष्ठ उद्योग में परावैद्युत ताप के क्षेत्र का अभी ठीक से पता नहीं चल पाया है। गुण सुधार में कुछ अतिरिक्त लाभों के साथ यह तकनीक सामान्य पारंपरिक सुखाने के तरीके की तुलना में बहुत अधिक प्रभावी है। आमतौर पर उद्योगों द्वारा उपयोग की जाने वाली लकड़ी वृक्षारोपण से प्राप्त होती है जिसे उपचारित करने की आवश्यकता होती है। तेजी से उगाए जाने वाले वृक्षारोपण के कारण, लकड़ी में तनाव के विकास की संभावना भी अधिक होती है जो लकड़ी के प्रसंस्करण को प्रभावित करती है। परावैद्युत क्षेत्र लकड़ी के उपचार और संशोधन के नए तरीके खोलता है। लकड़ी का परावैद्युत उपचार संरक्षण और प्रतिधारण को बढ़ाता है, लेकिन लकड़ी के यांत्रिक गुणों पर कुछ नकारात्मक प्रभाव भी दिखाता है। विशिष्ट प्रजातियों के परावैद्युत उपचार के लिए मापदंडों का अनुकूलन बहुत आवश्यक हो जाता है क्योंकि लकड़ी की मजबूती के नुकसान से कोई समझौता नहीं किया जा सकता है। लकड़ी को सुखाने और संरक्षण के अलावा अन्य परावैद्युत तापन के उपयोग का पता लगाया जा सकता है। पी.एफ. जैसे हॉट सेटिंग आसंजक (ऐड्हीसिव) को चिपकाने के लिए परावैद्युत तापन का उपयोग किया जा सकता है, हालांकि प्लाईवुड क्षेत्र में प्रयोग पहले से ही प्रगति पर है तथा सी.एल.टी. (क्रॉस लैमिनेटेड टिम्बर) और जी.एल.टी. (ग्लू लैमिनेटेड टिम्बर) के निर्माण में और विस्तार किया जा सकता है। टिम्बर लैमिनेट्स के मामले में, हॉट सेटिंग आसंजक का उपयोग प्रतिबंधित है, क्योंकि लैमिनेट के अन्तर्भाग में परिचार आसान नहीं है क्योंकि सामान्य हॉट प्रेस मशीनों में सतह से अन्तर्भाग की ओर ताप का स्थानांतरण शुरू होता है। ऐसे मामले में परावैद्युत तापन एक सार्थक विकल्प है क्योंकि परावैद्युत तापन के मामले में तापन सतह से शुरू नहीं होता है। इसके अतिरिक्त, ध्रुवीय अणुओं की उपस्थिति अन्तर्भाग और सतह को समान रूप से गर्म करेगी और उसी उद्देश्य के लिए उपयोग की जा सकती है। लकड़ी की असम दिग्वर्ती प्रकृति और व्यापक उपयोग देश में परावैद्युत उपचार के अनुसंधान के दायरे को बढ़ाती है।

निष्कर्ष

नम लकड़ी पर सूक्ष्मजीवों द्वारा हमला किया जाता है, और सुखाने से लकड़ी के क्षरण की संभावना कम हो जाती है। पारंपरिक तरीकों से लकड़ी को सुखाने में लंबी अवधि और उच्च ऊर्जा लगती है। परावैद्युत तापन प्रक्रिया लकड़ी को सुखाने की ऊर्जा कुशल तकनीक है, जिसमें कम–से–कम दोष और बेहतर गुण प्राप्त होते हैं और यह किफायती एवं पर्यावरण के अनुकूल भी है। सुखाने के अलावा यह लकड़ी के पादप स्वच्छता के लिए एक पर्यावरण हितैषी विकल्प हो सकता है, क्योंकि यह मिथाइल ब्रोमाइड उपचार की जगह ले सकता है जो स्तनधारियों और पर्यावरण के लिए बहुत खतरनाक है।

31 चंदन के संभावित पोषक पौधे एवं वृक्ष

डॉ. संदीप चक्रवर्ती, श्री शिवराजा के.एस., श्री मंजुनाथ एल., श्री बी.एस.चंद्रशेखर एवं श्री बी.एस.शेट्टापनवर
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

भारतीय वन की 'सुनहरी सुगंध' (Golden Fragrance) के रूप में मान्यता प्राप्त 'चंदन' (*Santalum album;* Santalaceae) परिवार मानव जाति के लिए प्रकृति का एक अद्भुत उपहार है। यह एक ऐसी उपयोगी प्रजाति है जहाँ पत्ती की युक्तियों से लेकर गहरी निचली जड़ों तक का विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है। यह एक सदाबहार प्रजाति है जो प्रायद्वीपीय भारत के दक्कन क्षेत्र (कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल) में पायी जाती है। वास्तव में, चंदन प्रकृति में आंशिक परजीवी है, इसके अच्छे विकास के लिए मेजबान पेड़ (Host) की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि चन्दन का पेड़ कुछ हद तक अपने भरण–पोषण के लिए दूसरे पेड़–पौधे पर निर्भर रहता है। वह पोषक तत्वों, जैसे कि नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटैशियम (K), कार्बन (C) आदि का स्थानान्तरण मेजबान पौधे के जड़ के माध्यम करता है, जिसे हॉस्टोरिया (Haustoria) कहते है। अच्छी तरह से विकसित हॉस्टोरिया एक परिधीय हाइलिन बॉडी के आकार का होता है और मेजबानों की जड़ में केंद्रीय रूप से जुड़ा रहता है। ये परजीवी द्वारा बनाई गई प्रमुख संरचनाएं हैं जो मेजबान–व्युत्पन्न जाइलम के अधिग्रहण की सुविधा प्रदान करती हैं। आम तौर पर, चंदन की गुणवत्ता हार्टवुड (लकड़ी के पेड़ों के केंद्र में जमा पुराने सख्त गैर–जीवित ऊतक, जो आमतौर पर गहरा, सघन, कम पारगम्य और बाहरी परत (सैप वुड) की लकड़ी की तुलना में अधिक टिकाऊ होता है) की मात्रा और उसमें मौजूद तेल से किया जाता है।

वर्तमान में, अधिक दोहन के कारण, इसे आई.यू.सी.एन. (IUCN) की कमजोर श्रेणी के तहत सूचीबद्ध किया गया है और इसकी कमी के कारण माँग और आपूर्ति के बीच भारी अंतर है जो न केवल भारत में बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी व्याप्त है। कुछ दक्षिणी राज्यों में नियमों के उदारीकरण के बाद, किसानों ने चंदन के रोपण के लिए गहरी रुचि दिखाई है। अब यह प्रजाति केवल दक्षिणी राज्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि देश के विभिन्न हिस्सों जैसे हिमाचल प्रदेश, पंजाब, गुजरात, राजस्थान, असम, अरुणाचल प्रदेश, बिहार आदि में भी फैली हुई है। इसकी व्यापक वातावरणीय अनुकूलक क्षमता ही इसे विशेष बनती है। इसी कारण चंदन देश के विभिन्न क्षेत्रों (जल भराव और भीषण ठंड की स्थिति को छोड़कर) में एक स्थायी एवं अच्छी आमदनी के स्रोत के रूप में कृषक समुदायों के बीच लोकप्रिय हो रहा है। कृषक समुदाय में इसकी व्यापक स्वीकार्यता ने उपयुक्त मेजबानों पर चर्चा शुरू करवा दिया है। कुछ होस्ट पर शोध पहले से ही शोधकर्ताओं द्वारा किए जा चुके हैं जो आम तौर पर विभिन्न मेजबानों के साथ चंदन के रूपात्मक डेटा पर आधारित थे। यह लेख विभिन्न प्रकार के मेजबानों के बारे में जानकारी को पूरा करने का एक प्रयास है जिसका उपयोग चंदन की खेती के विभिन्न चरणों के दौरान किया जा सकता है। मेजबानों (Hosts) को क) प्राथमिक, ख) मध्यवर्ती/आंतरायिक/अल्पकालिक और ग) माध्यमिक/दीर्घकालिक मेजबान के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

क) प्राथमिक मेजबान (Primary Hosts): नर्सरी में उगाये जाने वाले चंदन के साथ साधारणतः छोटे आकर की जड़ी–बूटियों के पौधों को इस वर्ग में रखा जाता है। साधारणतः चंदन को उगाने के लिये छोटे आकार का प्लास्टिक का बैग (5x8 inch) उपयोग किया जाता है। होस्ट एवं चन्दन के बीच तकरीबन 5 से 8 cm की दूरी रखी जाती हैं। कम दूरी होने के कारण हॉस्टोरिया

(जड़ से जड़ का जुड़ाव) जल्दी बनता है और कम समय में चंदन को जरुरत के हिसाब से पोषक तत्व मिलने लगता है। चंदन के पौधों के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए 5x8 इंच पॉलीथिन कवर का उपयोग किया जाता है जो कि एक साल (पोषक तत्वों की उपलब्धता पर निर्भर) तक के लिए काफी है। शोधकर्ताओं ने इनमें से कुछ प्रजातियों को उपयुक्त प्राथमिक मेजबानों (Hosts) के रूप में पहचाना है, जैसे कि *Alternanthera nana* (downy joyweed/hairy joyweed), *Mimosa pudica* (छुइमुइ/लज्जावती), *Cajanus cajan* (तूर/अरहर दाल), *Aerva sanguinolenta* (कारादिअ), *Mentha arvensis* (पुदीना), *Alternanthera ficoidea* (कुसल), *Alternanthera sessilis* (गुडरी सागु), *Alternanthera tenella*, *Solanum lycopersicum* (टमाटर), आदि। देश भर में ये होस्ट आसानी से पाए जाते हैं। इन मेजबानों का उपयोग बहुत ही किफायती और प्रबंधनीय है। कुछ मेजबान चंदन के साथ खेत में रोपाई के बाद बड़ी तेजी से बढ़ते हैं जो एक से दो साल तक चन्दन को पोषित कर सकते हैं। इसलिए, यह सलाह दी जाती है कि प्राथमिक मेजबान को भी चंदन के पौधों के साथ खेत में प्रत्यारोपित किया जाना चाहिए।

ख) **मध्यवर्ती/आंतरायिक/अल्पकालिक (Intermediate/intermittent/short term)**: छोटे पेड़ प्रजातियाँ या पौधे जो कम समय अवधि के लिए चंदन का पोषण करने में सक्षम है। कुछ ऐसी प्रजातियाँ, जैसे कि *Cajanus Cajan* (तूर दाल) (1–2 वर्ष), Citrus Species (निम्बू प्रजातियाँ) (5–6 वर्ष), *Punica Granatum* (अनार, 8–12 वर्ष), *Sesbania Grandiflora* (अगाथी, 12–15 वर्ष), कुछ तेलहन व दलहन की खेती जिन्हें चंदन के साथ या पहले एक से दो मीटर की उचित दूरी पर लगाया जा सकता है। इन पौधों की खेती के दौरान यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि चन्दन की जड़ों को कोई नुकसान न पहुंचे। सर्वेक्षण के दौरान यह देखा गया कि साइट्रस (निम्बू) प्रजातियों के साथ चंदन की प्रारंभिक वृद्धि उत्कृष्ट रहती है। लेकिन बाद में परजीवी प्रभाव और पोषक तत्त्वों को सोखने की प्रतियोगिता के कारण इसका 5–6 साल से अधिक जीवित रहना संदिग्ध हो जाता है। इसके अलावा, यह भी देखा गया कि कृषि–वानिकी मॉडल में इन मेजबानों की उपज भी प्रभावित होती है। इस तरह के मॉडल किसानो को मध्यावधि आर्थिक उपार्जन में सहायक होती है जो वे चन्दन के देखभाल में खर्च कर सकते हैं।

ग) **द्वितीयक/दीर्घकालिक मेजबान (Secondary/Long Term Host)**: वृक्ष प्रजातियाँ जो चंदन की पूरे जीवन काल की अवधि तक जीवित रह सकती हैं और चन्दन को निरंतर पोषित कर सकती हैं। वानिकी प्रजातियाँ जैसे *Casurina equisetifolia* (बीच शी–ओक), *Melia dubia* (महानीम), Acacia nilotica (बबूल), *Wrightia tinctoria* (Dudhi/Karayaja), *Pongamia pinnata* (करंज), *Terminalia arjuna* (अर्जुन), *Dalbergia Species* (शीशम/रोज वुड), *Cassia siamea* (कसोड), *Bauhinia bloba* (कचनर), *Samanea saman*, *Acacia spp* (बाबुल/आकाश मोनी), *Azadirachta indica* (नीम), *Cassia fistula* (अमलतास), *Grevillea robusta* (सिल्क ओक), *Syzygium cumini* (जामुन), *Zizyphus mauritiana* (बेर), *Calitropis gigantean* (मदार), *Albizia sp.* (सिरिस) को उपयुक्त मेजबान के रूप में शोधकर्ताओ ने सूचित किया है। यह भी देखा गया है कि कुछ बागवानी फसलें जैसे कि *Phyllanthus officinalis* (अमला), *Mangifera indica* (आम), *Psidium guajava* (अमरुद), *Tamarindus indica* (इमली), *Annona squamosa* (सीता फल), *Artocarpus integrifolia* (कटहल), आदि

चंदन + अल्टरनेथेरा

चंदन + मीलिया डूबिया

चंदन + सहजन

चंदन + नींबू प्रजातियाँ

कृषि–वानिकी मॉडल उपयुक्त मेजबान हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने यह भी पाया है कि N_2 फिक्सिंग पेड़ गैर–N_2 फिक्सिंग की तुलना में अधिक उपयुक्त हैं।

अल्पकालिक और दीर्घकालिक होस्ट के लिए सही भूमिगत अंतराल (Spacing), चयनित होस्ट के रूपात्मक लक्षणों के अनुसार होनी चाहिए। आम तौर पर, लंबी अवधि के मेजबानों के लिए 4 मी. x 4 मी. को चंदन से चंदन के बीच मानक अंतर माना जाता है। इसके अलावा, देश भर में विभिन्न जलवायु परिस्थितियाँ तथा विभिन्न प्रकार के कृषि–वानिकी मॉडल की सूचना है जिसमें *Murraya koenigii* (करी पत्ता), *Cocos nucifera* (नारियल), *Areca catechu* (सुपारी), *Moringa oleifera* (सहजन) जैसे होस्ट का भी इस्तेमाल किया जा रहा है। कहीं–कहीं तो अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों तरह के होस्ट का प्रयोग चंदन के साथ किया जा रहा है। वास्तव में, किसान उन होस्ट के बारे में अधिक जानने के लिए उत्सुक हैं जो स्थानीय जलवायु एवं मिट्टी के अनुसार जल्द प्रारंभिक और मात्रात्मक (Quantity) अन्तः काष्ठ (चंदन) का गठन तथा अधिक मात्रा में चंदन के तेल होने का जिम्मेदार होता हो। लेकिन वैज्ञानिकों के पास इस सवाल का अभी तक कोई सटीक जबाब नहीं है। इसलिए, ऐसे सवालों के जवाब देने के लिए चंदन के जैव–रासायनिक और पारिस्थितिक–शारीरिक पहलुओं पर अधिक अध्ययन की आवश्यकता है।

32 बोनिंघुसीनिया अल्बिफ्लोरा : एक कीट विकर्षक एवं वानस्पतिक कीटनाशक

सुश्री सविता कुमारी बन्याल,
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

बोनिंघुसीनिया अल्बिफ्लोरा (*Boenninghauseniaalbiflora*) एक पतली, शाखित, चिरस्थायी जड़ी बूटी है, जो 30–60 सेंटीमीटर तक ऊँची होती है एवं रूटेसी परिवार से संबंधित है। इसका सामान्य नाम व्हाइट हिमालयन रियू है। हिंदी में इसे ''पिसूमार बूटी'' भी कहा जाता है। इस पौधे का नाम सबसे महान होम्योपैथों में से एक "बैरन वॉन बोएनिंगहौसेन" के नाम पर रखा गया था, जो नीदरलैंड से थे एवं 19वीं शताब्दी के महान वनस्पतिशास्त्री भी थे।

***बोनिंघुसीनिया अल्बिफ्लोरा* का पौधा**

यह एक सुंदर पौधा है जिसकी पत्तियाँ रियू (*रूटा ग्रेवोलेंस*) से मिलती जुलती हैं। यह एक उभयलिंगी पौधा है (इसमें नर और मादा दोनों अंग होते हैं)। सफेद फूलों के कारण इसे अक्सर "थैलिक्ट्रम" समझ लिया जाता है। इसका तना भूरा–लाल, बाल रहित या कभी–कभी मखमली होता है। इसकी पत्तियाँ हरी या पीली हरी, मिश्रित (Compound),एक के बाद एक (बारी–बारी) से व्यवस्थित होती हैं (3–5–पिननेट)। पत्रक 4–16 मिमी0 लंबे, 4–11 मिमी0 चौड़े, पतले डंठल वाले होते हैं। इसके फूल छोटे होते हैं और पतले डंठल पर बहुतायत में पैदा होते हैं। इसकी पंखुड़ियाँ 4–5, लगभग 5–6 मिमी0 लंबी एवं तिरछी होती हैं। इसका पुंकेसर 6–8 तंतु वाले, पतले, असमान एवं पंखुड़ियों वाले होते हैं। यह भारतीय क्षेत्र का माना जाता है और चीन के दक्षिण–पूर्व और दक्षिण–पश्चिम तक वितरित है। यह भूटान, नेपाल, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, फिलीपींस, म्यांमार, थाईलैंड, लाओस, उत्तरी वियतनाम, चीन और जापान में भी पाया जाता है। हिमालय में यह कश्मीर से भूटान तक 600–3300 मीटर तक की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह सफेद हिमालयन रियू पौधा हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में नम छायादार स्थानों में 2000 से 3000 मीटर के बीच पाया जाता है।

भौतिक विशेषताएँ

यह पौधा हल्की रेतीली, मध्यम (दोमट), अच्छी जल निकासी वाली, कम अम्लीय, तटस्थ और कम क्षारीय मिट्टी में पाया जाता है। परंतु यह छाया में नहीं उग सकता। इस पौधे का उपयोग सजावटी पौधों के रूप में किया जा सकता है लेकिन यह अल्पकालिक है। इसके पत्ते बहुत सुगंधित होते हैं।

पुष्पनः इसमें पुष्प समान्यतः जून के मध्य से अक्टूबर तक आते हैं।

फलः इसमें फल अक्तूबर से फरवरी तक आते हैं।

खेती का विवरण

यह पौधा समान्यतः अपने पारिस्थितिक परिवेश में आसानी से उग जाता है। इसके प्रसार में कोई कठिनाई नहीं है परंतु अगर इसे ज्यादा संख्या में उगाना हो तो इसे एक अच्छी तरह से सूखी मिट्टी में एक गर्म आश्रय जो बहुत

शुष्क न हो, की आवश्यकता होती है। यदि सर्दियों में मिट्टी बहुत गीली है तो पौधों के सड़ने की संभावना ज्यादा होती है। यह प्रजाति –5 और –10 डिग्री सेल्सियस के बीच के तापमान को आसानी से सहन कर सकती है। अत्यधिक सर्दियों में पौधों को अक्सर जमीन के ऊपर से काटा जाता है लेकिन वे आमतौर पर आधार से फिर से उग आते हैं। सर्दियों में पौधों को नुकसान से बचाने के लिए जड़ों को घास से ढकना चाहिए एवं घास गीली रखनी चाहिए।

प्रसार

बीजः बीजों के माध्यम से इसका प्रसार सबसे अच्छा एवं अत्यधिक होता है। यदि बीजों को फरवरी से मई महीनों के दौरान बोया जाए तो वे अधिक मात्रा में अंकुरित होते हैं। बोने के पश्चात, बीजों को कुछ देर के लिए ढक देना चाहिए। अंकुरण 15 डिग्री सेल्सियस पर आमतौर पर 1–3 महीने के भीतर हो जाता है। जब पौधे पर्याप्त बड़े हो जाएँ तो उन्हें अलग–अलग गमलों में रोपें और कम से कम उनकी पहली सर्दी के लिए उन्हें गमले में ही रहने दें। इसके पश्चात, वसंत या गर्मियों की शुरुआत में उन्हें अपनी स्थायी स्थिति में लगा दें।

पारंपरिक, औषधीय और अन्य उपयोग

परंपरागत रूप से, *बोनिंघुसीनिया अल्बिफ्लोरा* पौधे का उपयोग कई औषधीय प्रयोजनों जैसे कि घाव का उपचार, रक्तस्राव का उपचार, और संक्रमण के लिए किया जाता है। इसकी पत्तियों का रस, त्वचा के रोगों के इलाज के लिए भी किया जा सकता है। उपचार प्रक्रिया को तेज करने के लिए पत्तियों को पीसकर घावों पर लगाया जाता है। खुजली के उपचार में पत्तियों का लेप भी लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ और फूल, जूओं और टिक्स के खिलाफ प्रभावी होते हैं। इन कीड़ों से छुटकारा पाने के लिए पौधे का पेस्ट पानी से बनाया जाता है और संक्रमित जानवर के शरीर पर सीधे रगड़ा जाता है। आदिवासियों के अनुसार, इसके सूखे पौधे, खटमल और पिस्सू के खिलाफ भी एक विकर्षक के रूप में कार्य करते हैं। उपयोग के दौरान पौधे को बिस्तरों और रजाई के बीच में रखा जाता है जिससे कि कीट पास न आ सकें। इसके पत्तों का रस लेप की तरह लगाने से सिरदर्द से राहत मिलती है। इसकी उबली हुई जड़ का उपयोग मलेरिया के इलाज के लिए भी किया जाता है। *बोनिंघुसीनिया अल्बिफ्लोरा* में सगंध तैलों के फाइटोकेमिकल यौगिक होते हैं एवं उनकी क्षमता के बारे में कई रिपोर्ट्स भी हैं, इसमें 0.2–0.4% सगंध तैल होते हैं।

वानिकी में बोनिंघुसीनिया पौधे का उपयोग एक कीट विकर्षक और वानस्पतिक कीटनाशक के रूप में किया जा सकता है। *बी. अल्बिफ्लोरा* की पत्तियों में विशिष्ट तीखी सुगंध वाले तैल होते हैं जिसका संभावित रूप से एंटी–माइक्रोबियल, एंटीऑक्सीडेंट, प्राकृतिक सुगंध और अरोमाथेरेपी के रूप में उपयोग किया जा सकता है। *बी. अल्बिफ्लोरा* के इथेनॉल अर्क का उपयोग कई वानिकी पौधों के कीटनाशक के रूप में किया जा सकता है। कीट मृत्यु दर खुराक की सान्द्रण पर निर्भर करती है यदि सांद्रण ज्यादा होगी तो मृत्यु दर भी ज्यादा होगी। कृषि एवं वानिकी के क्षेत्र में इसे बायोपेस्टिसाइड के रूप में ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जा सकता है ताकि पौधों के साथ साथ पर्यावरण को भी कोई नुकसान न पहुँचे।

***बोनिंघुसीनिया अल्बिफ्लोरा* के फूल**

33 चिरौंजीः मध्य भारत के आदिवासियों की आजीविका का महत्वपूर्ण स्रोत

श्री सौरभ दुबे एवं सुश्री निकिता राय
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

परिचय

चिरौंजी भारतीय उप–महाद्वीप का मूल निवासी वृक्ष है। यह वृक्ष भारत सहित दक्षिण तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों मे पाया जाता हैं। मध्य भारत के परिप्रेक्ष्य में यह वृक्ष मिश्रित वनों तथा साल वनों के साथ पाया जाता हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में प्रमुख रुप से बस्तर वन अंचल के जिलों सहित, मध्य प्रदेश राज्य में यह सिवनी, छिंदवाड़ा, बालाघाट व मण्डला आदि जिलों पाया जाता है।

चिरौंजी का वृक्ष

सामान्य तौर से चिरौंजी के नाम से पहचाने जाने वाले इस वृक्ष का वानस्पतिक नाम *बुकननिया कोचिनचिनेंसिस* या *बुकननिया लंजन* है। संस्कृत में इसे प्रियाल या प्रियालक, हिन्दी में चार या चिरौंजी, गुजराती में चारोली, बांग्ला में पियल तथा अंग्रेजी में अल्मन्डेटे आदि नामों से जाना जाता है। *ऐनाकार्डिऐसी* कुल का यह वृक्ष 15 मी. से अधिक ऊँचाई तक बढ़ सकता है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग या काले रंग की पतली व गहरी दरारों से युक्त (मगरमच्छ की खाल के सामान) होती है।

पुष्पन दिसम्बर से फरवरी माह तक होता है, तथा छोटे–छोटे, हरे–सफेद रंग के फूल गुच्छों में आते हैं। पुष्पन के बाद फलों का लगना प्रारम्भ होता है, जो अप्रैल से मई माह के अंत तक पक कर तैयार हो जाते हैं। फल कच्चे होने पर हरे तथा पकने पर गहरे लाल–नीली रंगत के होते हैं। इसका एकल बीज, कठोर बीज आवरण में होता है।

आदिवासियों की आजीविका व जीवनयापन में सहायक

मध्य भारत के वन अपनी अतुल्य वन सम्पदा के कारण, वनों तथा आस–पास रहने वाले विभिन्न आदिवासी समुदायों के जीवनयापन हेतु पर्याप्त संसाधन प्रदान करते हैं। यहाँ के आदिवासी अपनी ज्यादातर जरुरतों की पूर्ति के लिये इन वनों पर निर्भर करते हैं, चाहे भोजन हेतु पत्र, फल, कंदीय वनस्पतियाँ हों या उपचार हेतु औषधियाँ। आदिवासी समुदाय द्वारा अपनी आर्थिक जरुरतों को पूरा करने के लिये विक्रय हेतु अनेक अकाष्ठ वनोपज जैसे– हर्रा, बहेड़ा,

माहुलपत्ता, तेंदूपत्ता, महुआ फूल व बीज, साल बीज तथा अनेक प्रकार की जड़ी बूटियों का संग्रहण बड़े पैमाने पर इन वनों से किया जाता है। इन्हीं वनोपज में से एक महत्त्वपूर्ण वनोपज है– चिरौंजी बीज, जिसका संग्रहण ग्रीष्म काल में किया जाता है। अच्छी फसल के समय एक परिवार दिनभर में लगभग 5 से 10 किलो तक गुठली एकत्र कर लेता है।

बादाम के स्वाद से मिलता जुलता इसका बीज, कठोर बीज आवरण या गुठली को फोड़ने के बाद प्राप्त होता है, जिसे चिरौंजी बीज या गिरी कहते हैं। इसे सूखे मेवे की तरह इस्तेमाल किया जाता है तथा इसकी बाजार माँग भी अधिक है। बाजार मूल्य अधिक होने के कारण इसके संग्रहण से आदिवासी समुदायों का आर्थिक फायदा भी अधिक होता है। यदि बाजार भाव उचित नहीं होता है तो इन गुठलियों को सुखाकर त्योहारों के समय बीज निकालकर भी अच्छे दामों में बेचा जाता है।

चिरौंजी वृक्ष जो अपने विभिन्न औषधीय गुणों से अनेक प्रकार के रोगों को भी समाप्त करने में मदद करता है। आयुर्वेद में चिरौंजी के वृक्ष के प्रत्येक भाग का उपयोग विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार में प्रयोग करने का वर्णन किया गया हैं। आदिवासी समुदाय में जड़ी–बूटियों से उपचार करने में जानकार इसकी जड़, पत्ती, फल, बीज और गोंद से कई बीमारियों का उपचार करते हैं।

चिरौंजी बीज या गिरी

बीज या गिरी को पीसकर घाव पर लगाया जाता है तथा हल्के जलने वाले स्थान पर जलन शांत करने के लिये भी इसका लेप बनाकर लगाते हैं। मुँह के छाले होने पर इसकी गिरी के पेस्ट को छालों पर लगाया जाता है, जिससे उनमें चिकनाहट बनी रहे। फोड़े आदि घावों को भरने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। त्वचा संबंधी रोगों जैसे दाद, खुजली व आदि में भी आदिवासी इसका लेप लगाकर इनका उपचार करते हैं। इसकी गिरी बहुत पौष्टिक होती है, जिसके कारण इसका उपयोग कुपोषण दूर करने व शारीरिक ताकत बढ़ाने में भी किया जाता है।

पत्तियाँ

इसकी पत्तियों का प्रयोग भी घावों तथा छालों के उपचार में किया जाता है। कब्ज, पेट के विकार, खाँसी आदि के उपचार के लिये भी यह कारगर होती है।

गोंद

चिरौंजी वृक्ष से प्राप्त होने वाले गोंद का प्रयोग विभिन्न प्रकार के चिकित्सा प्रयोजनों हेतु किया जाता है, जैसे– गठिया, हृदय संबंधी विकार, डायरिया आदि। जड़ का उपयोग डायरिया के उपचार में किया जाता है।

चिरौंजी वृक्ष के अस्तित्व पर संकट

कुछ दशक पहले मध्य भारत के वनों में चिरौंजी के फलोत्पादन करने वाले बड़े वृक्षों की अच्छी आबादी मौजूद थी, परंतु आज के वनों का परिदृश्य बदला हुआ है। मौसम में अवांछित बदलाव, सिकुड़ते हुये वन क्षेत्र व अवैध कटाई से जहाँ एक ओर इनकी फलोत्पादन करने वाले स्वस्थ पेड़ों की आबादी कम हुई है, वही दूसरी ओर अवैध पशु चराई व वनोपज एकत्र करने के लिये वनों में लगाई जाने वाली आग ने इन वृक्षों के पुनरोत्पादन को भी प्रभावित किया है। ग्रामीण अधिक लाभ लेने के लिये ज्यादा गुठलियों का संग्रहण करना चाहते हैं, इसके लिये एक–एक गुठली को एकत्र करने के स्थान पर वे वृक्षों की फलदार शाखाओं या छोटे वृक्षों को तने से ही काट देते हैं, जिससे वृक्ष अगले साल फलोत्पादन करने में सक्षम नहीं रह जाता या फिर सूख जाता है। इससे न केवल संग्रहणकर्ता का नुकसान होता है, बल्कि भविष्य में उन फलों के बीज से बनने वाला पौधा भी कभी धरती पर उग नही पाता। वर्तमान समय में अधिक फायदा लेने की कोशिश में वे न केवल अपने भविष्य के मुनाफे का नुकसान करते हैं, वरन् चिरौंजी के वृक्षों के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिह्न लगा देते हैं।

34

प्रूनस आर्मेनियका (चूली) : एक महत्वपूर्ण जंगली खाद्य वृक्ष प्रजाति

डॉ. स्वर्ण लता, सुश्री वर्षा एवं श्री ऋषभ शर्मा
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचय

प्रूनस आर्मेनियका (चूली) एक अत्यंत महत्वपूर्ण वन्य खाद्य वृक्ष प्रजाति है। यह खाद्य फल के साथ उत्तम जलाऊ लकड़ी एवं तेल प्रदान करता है तथा इसके सूखे पत्तों को सर्दियों में पशुओं को खिलाया जाता है। प्राचीन काल से इस प्रजाति का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में विभिन्न रोगों के उपचार के लिया किया जाता रहा है। फलों के आकर्षक रंग एवं विशिष्ट स्वाद के अलावा ये कार्बोहाइड्रट, खनिज एवं सिट्रिक एसिड के समृद्ध स्रोत हैं परंतु इसके फलों में *प्रूनस आर्मेनियका* (खुमानी) की तुलना में अम्ल की मात्रा अधिक तथा शर्करा की मात्रा कम होती है। यह प्रजाति एशिया और काकेशस की मूल है। वर्तमान में इस प्रजाति की खेती विश्व के सभी शीतोष्ण क्षत्रों में की जाती है तथा तुर्की इसका सबसे बड़ा उत्पादक देश है। यह वृक्ष भारत के जम्मू और कश्मीर एवं लद्दाख केंद्र शासित प्रदेशों और हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड राज्यों में उच्च ऊँचाई वाले इलाकों में पाया जाता है। इसे स्थानीय बोली में चूली, चुलथ, चिरकूज, चुलऊ, चूलू, जंगली चूली एवं जंगली खुमानी के नाम से जाना जाता है। इस वृक्ष में सूखा प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है। यह सभी प्रकार के मिट्टी में उगता है तथा –40°C तापमान में भी जीवित रह सकता है।

***प्रूनस आर्मेनियका* (चूली) के फल**

विवरण

प्रूनस आर्मेनियका (चूली) एक मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है जिसकी ऊँचाई 8–10 मीटर एवं परिधि 40 सेमी. होती है। यह प्रजाति रोजेसी कुल से संबंध रखती है। इसकी छाल सलेटी भूरे रंग की होती है। पत्तियाँ अंडाकार, गहरे हरे रंग की होती हैं। फूल सफेद गुलाबी रंग के होते हैं, जो शाखाओं पर अकेले व जोड़े में पत्तियों के आने से पहले लगते हैं। फूल मार्च–अप्रैल के महीने में आते हैं। निचले पहाड़ी क्षेत्रों में इसके फल जून–जुलाई में तथा ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षत्रों जुलाई–अगस्त में परिपक्व होते हैं। फल गोलाकार, 1.5–2.0 सेमी. लंबे, पीले एवं संतरी रंग के होते हैं। बीज अंडाकार, हल्के भूरे रंग, 1 सेंटी मीटर लंबे एवं भूरे रंग के सख्त बीज आवरण के अंदर होते हैं।

वितरण एवं आवास

विश्व में इसका वितरण सीमित है तथा पूरे विश्व में प्रूनस की लगभग 430 प्रजातियाँ पायी जाती है। यह प्रजाति अमेरिका, मोरक्को, ईरान, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया, उज्बेकिस्तान, अल्जीरिया, इटली, स्पेन, पाकिस्तान और फ्रांस, चीन एवं भारत में मुख्यत: शीतोष्ण क्षत्रों में पायी जाती है। भारत में यह प्रजाति मुख्य रूप से जम्मू और कश्मीर एवं लद्दाख केंद्रशासित प्रदेशों तथा हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड

और कुछ उत्तर पूर्वी हिमालयी राज्यों में 1500–3500 मीटर की ऊँचाई वाले वन क्षेत्रों एवं कृषि वानिकी भूमि उपयोग प्रणालियों में पायी जाती है। हिमाचल प्रदेश में यह प्रजाति मुख्यतः कुल्लू, शिमला, मंडी, चंबा, लाहौल–स्पीति, सिरमौर एवं किन्नौर जिलों में पाई जाती है।

पौधे को उगाने की विधि

प्रकृति में यह पौधा स्वयं उगता है परंतु नर्सरी में इसके पौधों को बीजों की बुआई द्वारा उगाया जा सकता है। बीजों को नर्सरी में 3–4 सेंटीमीटर की गहराई पर पंक्तियों में नवम्बर–मार्च तक की समयावधि में लगाया जाता है तथा दूरी 10–15 सेंटी मीटर रखी जाती है। 10 महीने में पौधा रोपण हेतु तैयार हो जाता है। इसका पौधारोपण दिसम्बर–जनवरी की समयावधि में 45x45x45 सेंटीमीटर गड्ढों में 5x5 मीटर की दूरी पर किया जाता है।

कीट एवं बीमारियाँ

खुमानी की प्रजातियों एवं किस्मों की तुलना में यह वृक्ष कीटों और रोगों के प्रति कम संवेदनशील होती है परंतु कभी–कभी कीट, फफूंद, जीवाणु की प्रजातियाँ नुकसान पहुँचाती हैं जिसमें एफिड, शलभों (*साइडिया पोमोनेला, यूप्रोक्टिस सिमिलिस*), जीवाणु (*स्यूडोमोनास सिरिंज*), फफूंद (*स्फेरोथे कापैनोसा*) प्रमुख हैं जो इन वृक्षों की जड़ों, तने, शाखाओं पत्तों, फूलों, फलों एवं छाल को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अलावा *उसनीया विसकम एलबम* (रुनाथ) नामक तने पर लगने वाले परजीवी भी इन चुली के वृक्षों पर अकसर लटकते हुए देखे जाते हैं जो इसके तनों एवं छाल को नुकसान पहुँचाते हैं। सर्दियों में *विसकम एलबम* को चूली के वृक्षों से निकाल कर लोगों द्वारा भेड़–बकरियों को खिलाया जाता है।

उपयोगिता

भारत में 1532 वन्य खाद्य पौध प्रजातियाँ पायी जाती हैं जो न केवल लोगों की दैनिक खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं अपितु पोषण के साथ कई बीमारियों से लड़ने के लिए प्रतिरक्षा प्रदान करती हैं। हमारे देश का पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र भी वन्य खाद्य पौध प्रजातियों में समृद्ध हैं तथा लगभग 675 पौध प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पायी जाती हैं। स्थानीय समुदाय पुरातन समय से ही वनों तथा कृषि वानिकी क्षेत्रों से इन जंगली खाद्य पौधों के फलों, फूलों एवं बीजों का भोजन के रूप में उपयोग करते आ रहे हैं। यह प्रजाति इसके साथ उगने वाली अन्य वृक्ष, झाड़ीनुमा एवं शाकीय पौधों को भी उचित आवासीय परिस्थितियाँ प्रदान करती है। इसलिए यह वृक्ष न केवल परिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण है अपितु इन क्षेत्रों में रहने वाले स्थानीय समुदायों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है जो निम्नलिखित हैं :

1. **सांस्कृतिक उपयोग:** हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में (मुख्यतः जिन क्षेत्रों में चिलगोजा के वृक्ष नहीं पाये जाते) चूली के बीजों की महिलाओं द्वारा मालाएँ बनायी जाती हैं जिन्हें 'चिक मलिंग' कहते हैं। इन मालाओं का, विवाह में वर–वधू तथा परिवार के सदस्यों, जन्म–मृत्यु संस्कारों, त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों, देवी देवताओं, गण्यमान्य व्यक्तियों के स्वागत, सम्मान एवं स्नेह प्रकट करने के लिए करते हैं। किन्नौर जिले में विभिन्न रीति–रिवाजों, देवी देवताओं के पूजन और सभी पारंपरिक अनुष्ठानों में चूली के शराब का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा स्थानीय लोगों एवं देवताओं द्वारा चूली के वृक्षों की पूजा हेतु त्यौहार 'चूल फ्लोरिग' भी मनाया जाता है ताकि हर वर्ष अच्छी फसल प्राप्त हो।

2. **सामाजिक उपयोग:** इसके फलों को ताजा एवं सुखा कर खाया जाता है। चुली के सूखे फलों को खाने से खट्टी डकार, कब्ज, बदहजमी की समस्या ठीक होती है। इसके कच्चे फलों एवं बीजों का उपयोग लोगों द्वारा चटनी तथा पके हुए फलों का उपयोग जेम बनाने में किया जाता है। आमतौर पर इसकी लकड़ी ईंधन के रूप में, कृषि औजारों के हैंडल बनाने तथा घरों की छतों में उपयोग की जाती है। सूखे फलों को बीज अलग करने के बाद 15–20 दिन तक किण्वन के बाद पारंपरिक अल्कोहलिक शराब बनायी जाती है जिसे चूलू आराक, चूलू राक व चूलू फासुर कहते हैं जो विभिन्न रीति–रिवाजों में उपयोग होती है। चूली के शराब

का उपयोग कब्ज की समस्या को ठीक करने में भी होता है। इसके बीजों से निकले गए तेल जिसे 'चूल तेलँग' कहते हैं, स्थानीय लोग सत्तू के साथ नाश्ते के तौर पर नमकीन चाय के साथ खाते हैं। चूली के बीजों से तेल निकालने के बाद बची खली व खल को गाय को खिलाने से गाय ज्यादा दूध देती है। चूली के तेल से शरीर की मालिश भी की जाती है तथा यह शरीर की फुलावट, गठिया तथा जोड़ों के दर्द को ठीक करती है। चूली के तेल की मालिश नवजात शिशुओं के लिए अत्यधिक लाभदायक होती है। चुली के सूखे फलों को सत्तू के साथ उबाल कर पारंपरिक व्यंजन 'चुल फानटिंग' तथा बीजों का पेस्ट बना कर चावल एवं सत्तू के साथ उबाल कर 'रेमो थुकपा' बनाया जाता है जिसके सेवन से शारीरिक कमजोरी, अपच, कब्ज, अतिसार से राहत मिलती है। इसके बीजों के बीजावरण को सर्दियों में ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। चुली के तेल के सेवन से नेत्र दृष्टि में सुधार, कान दर्द, बवासीर, कमजोरी, मोटापा, कब्ज, पेट में सूजन ठीक होता है। स्थानीय लोग रोज सुबह खाली पेट एक चम्मच चुली के तेल का सेवन टॉनिक के तौर पर भी करते हैं। इसके अलावा चुली के पौधे खुमानी के लिए रूट स्टॉक के रूप में उपयोग किए जाते हैं।

आर्थिक उपयोगः हिमाचल प्रदेश में चूली के वितरण क्षेत्रों में लोग फलों से शराब निकलते है। किन्नौर में स्थानीय स्तर पर पारंपरिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों मुख्यतः शादियों एवं त्योहारों में चूली के शराब का अत्यधिक उपयोग के कारण लोग स्थानीय स्तर पर मूरी (1000–1500/– रु) तथा राशि (200–300/– रु) की दर पर बेचते हैं। बीजों से तेल भी प्राप्त होता है तथा वर्तमान में इसका व्यापारिक मूल्य 1000–1500 रु प्रतिलीटर है। किन्नौर के चूली के तेल को चेन्नई के रजिस्ट्रार जनरल से भौगोलिक संकेत (जी.आई.) टैग भी प्राप्त है तथा जी.आई. टैग के लिए आवेदन मैसर्स किन्नौर चुल्ली–भेमी ऑयल प्रोड्यूसर्स एंड प्रोसेसर सोसाइटी द्वारा 24 फरवरी 2014 को दायर किया गया था।

वन्य जीव संरक्षण में भूमिकाः चूली एक वन्य फलदार वृक्ष प्रजाति है तथा वनों में वास करने वाले वन्य जीवों का भोजन का मुख्य स्रोत भी है। जंगलों में इस प्रजाति के पौधारोपण से न केवल जंगलों के नजदीक खेतों एवं बाग–बगीचों के फसलों को बंदरों, भालुओं एवं अन्य जीव जंतुओं के नुकसान से बचाया जा सकेगा अपितु इन वन्य जीवों का संरक्षण भी होगा।

चूली का तेल निकालने हेतु बीजों से बीजावरण अलग करती हुई स्थानीय महिला

संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता

प्रूनस आर्मेनियका के वितरण क्षत्रों में इसके वृक्षों की संख्या लगातार कम होती जा रही है जिसका मुख्य कारण किसानों एवं बागवानों का नकदी फसलों की तरफ अधिक रूझान है। आज से 25–30 वर्ष पूर्व इन क्षत्रों में चूली के वृक्ष प्रचुर मात्रा में थे परंतु आज के समय किसान–बागवानों सेब, नाशपाती, बादाम, खुमानी, अनार इत्यादि से अधिक व्यापारिक मूल्य प्राप्त करने हेतु पारंपरिक वृक्ष प्रजातियों से अपना रुझान हटा दिया गया है जो कभी उनके कठिन भौगोलिक परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए अत्यंत आवश्यक थे। लोग वनों एवं कृषि भूमि पर अधिक से अधिक सेब लगाने के लिए तथा सेब के पेड़ों को पर्याप्त मात्रा में धूप प्राप्त करने के लिए खुले क्षेत्र बनाने के लिए अपने खेतों एवं बागानों से चुली के पेड़ों को लगातार काट रहे हैं। इसके अलावा बहुत से अन्य मानवजनित कारकों जैसे पन बिजली परियोजनाओं, सड़कों एवं इमारतों का निर्माण, आग इत्यादि के कारण भी इसकी प्राकृतिक संख्या एवं प्राकृतिक आवासों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है।

35 चमत्कारिक हल्दी : प्रकृति का एक वरदान

डॉ. बी. पी. टम्टा, श्री अरूण उनियाल, श्री पुष्पेन्द्र सिंह, श्री सचिन कुमार एवं श्री रोहन सोलंकी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

हल्दी क्या है

हल्दी एक जड़ी–बूटी है, जिसके प्रकन्द (राइजोम) का इस्तेमाल मसालों तथा औषधीय घटक के रुप में किया जाता है। हिंदू धर्म में विभिन्न पूजा–पाठ एवं मांगलिक कार्यों में हल्दी का उपयोग मुख्य रूप से किया जाता है। भारतवर्ष में विशेष रूप से हिंदू धर्म में हल्दी को शुभ और मंगल लाने वाला माना जाता है। हल्दी खाने के स्वाद को बढ़ाने के साथ–साथ जीवन में सम्पन्नता भी लाती है। मुख्य रूप से हल्दी विषरोधक होती है और नकारात्मक ऊर्जा को नष्ट करती है, इसलिए हल्दी का प्रयोग हवन, पूजा पाठ तथा औषधीय उपयोगों में भी किया जाता है। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में हल्दी के गुणों पर कई अनुसंधान चल रहे हैं, जो आयुर्वेद में बताए गुणों की पुष्टि भी करते हैं।

हल्दी की गांठें

भारत में हल्दी की विभिन्न प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें मुख्य रूप से तीन प्रजातियों का प्रयोग औषधीय रूप में किया जाता है, जर्मप्लाज्म संरक्षण एवं औषधीय वाटिका, अकाष्ठ वन उपज शाखा, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में हल्दी की इन तीनों प्रकार की प्रजातियों का संरक्षण किया गया है। जिनका विवरण निम्नवत् हैः

- काली हल्दी *Curcuma caesia*
- आमा हल्दी *Curcuma amada*
- हल्दी *Curcuma longa*

काली हल्दी *(Curcuma caesia)*

हिन्दीः कचूर, काली हल्दी, कृष्ण केदार

काली हल्दी का परिचय, आयुर्वेदिक गुण एवं औषधीय उपयोग विधिः काली हल्दी एक सदाबहार जड़ी–बूटी है, जिसमें नीले–काले रंग के प्रकंद होते हैं। जो भारत के नम पर्णपाती जंगलों अधिकतर बंगाल, उत्तर पूर्व और मध्य भारत में, 180–950 मीटर की ऊँचाई में उत्पादित होती हैं। इसकी पत्तियों के मध्य में गहरे बैंगनी–लाल चकत्ते/धब्बे होते हैं, जो लैमिना की लंबाई के साथ बढ़ते हैं। आमतौर पर पत्ती का ऊपरी भाग खुरदरा होता है, फूलों का बाहय दल प्रायः हरे रंग का होता हैं जिनमें लौहित रंग होता है।

काली हल्दी का पौधा

काली हल्दी की पत्तियाँ

फूलों की पंखुड़ियाँ गहरे गुलाबी या लाल रंग की होती हैं। काली हल्दी के राइजोम का स्वाद कड़वा तथा तीक्ष्ण गंध युक्त होता है। वर्तमान में काली हल्दी विलुप्ति की कगार पर है।

आयुर्वेदिक गुण–कर्म एवं प्रभाव

आयुर्वेदिक साहित्यों के अनुसार काली हल्दी का उपयोग पाइल्स, कुष्ठ, ब्रोंकाइटिस, अस्थमा, कैंसर, मिर्गी, बुखार, नपुंसकता, प्रजनन क्षमता संबंधी विकार, मासिक धर्म संबंधी विकार, दांत दर्द, उल्टी आदि में किया जाता है।

औषधीय उपयोग विधि

1. **दाँतों की समस्या में उपयोगी:** काली हल्दी की गांठों के टुकड़ों को दाँतों के बीच दबाकर रखने से दाँतों का दर्द तथा सूजन में आराम मिलता है।

2. **फेफड़ों की सूजन में उपयोगी:** काली हल्दी के राइजोम का लेप छाती में लगाने से फेफड़ों की सूजन तथा सांस की समस्या में राहत मिलती है।

3. **खाँसी में उपयोगी:** काली हल्दी की गांठ को मुँह में रखकर चूसने से खांसी से आराम मिलता है।

4. **साँस की नली के रोग में उपयोगी:** काली हल्दी राइजोम के काढ़े में कुछ मात्रा में काली मिर्च, मुलेठी चूर्ण तथा मिश्री मिलाकर पिलाने से श्वास–नली का विकार कम होता है।

5. **बवासीर में उपयोगी:** काली हल्दी राइजोम को पीसकर बवासीर के मस्सों में लगाने से बवासीर में आराम मिलता है।

6. **जोड़ों के दर्द में उपयोगी:** काली हल्दी राइजोम को पीसकर उसमें फिटकरी मिलाकर जोड़ों में लगाने से जोड़ो के दर्द में आराम मिलता है।

आमा हल्दी *(Curcuma amada)*

हिन्दी नाम: आमा हल्दी, आमाहलद

आमा हल्दी का परिचय, आयुर्वेदिक गुण एवं औषधीय उपयोग विधि: भारत के लगभग सभी राज्यों में इसका उत्पादन किया जाता है। इसकी गाँठों में आम की सुगन्ध होने के कारण इसे आमा हल्दी के नाम से भी जाना जाता है। विभिन्न समुदाय के लोग इसकी गाँठों के टुकड़े करके सुखा लेते हैं तथा जिनका उपयोग विभिन्न प्रकार के मिष्ठानों तथा अन्य सामाग्री में आम की सुगन्ध लाने के लिए किया जाता है। इसके राइजोम बृहत् स्थूल बेलनाकार अथवा दीर्घवृत्ताकार शाखा युक्त होते हैं।

आयुर्वेदिक गुण–कर्म एवं प्रभाव

आमा हल्दी के राइजोम अजीर्ण, त्वचा रोग, श्वसन नलिका के रोग, वातरोग, अतिसार, मुख के विभिन्न रोग तथा कर्णरोग में लाभदायक होते हैं। यह वातानुलोमक, शीतलक, सुगंधवर्धक एवं पाचक इत्यादि के रूप में भी उपयोग किये जाते हैं।

औषधीय उपयोग विधि

1. **दाँत दर्द में उपयोगी:** आमा हल्दी के राइजोम चूर्ण तथा अफीम के मिश्रण का दाँतों पर मंजन करने से दाँत दर्द में आराम मिलता है।

2. **पेट दर्द में उपयोगी:** आमा हल्दी के राइजोम का काढ़ा बनाकर उसमें आमा हल्दी का अर्क तथा काली मिर्च मिलाकर पिलाने से पेट दर्द में आराम मिलता है।

3. **आमवात में उपयोगी:** 1 ग्राम आमा हल्दी के कंद चूर्ण में समान मात्रा में गेहूँ का आटा, शर्करा तथा घी मिलाकर, प्रतिदिन प्रातःकाल एक माह तक इसका सेवन करने से आमवात में लाभ प्राप्त होता है।

4. **त्वचा रोग में उपयोगी:** आमा हल्दी के राइजोम को गर्म पानी के साथ पीसकर, मुख तथा शिश्न आदि पर उत्पन्न त्वचा रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

सामान्य हल्दी *(Curcuma longa)*

हिन्दी नाम: हल्दी

सामान्य हल्दी का परिचय, आयुर्वेदिक गुण एवं औषधीय उपयोग विधि: सामान्य हल्दी एक प्रकंद जड़ी बूटी है, जो उष्णकटिबंधीय दक्षिण एशिया की मूल प्रजाति है। हल्दी भारत में एक बहुत ही महत्वपूर्ण मसाला है, सम्पूर्ण विश्व में उत्पादित हल्दी का लगभग 80% उत्पादन भारत में होता है।

हल्दी का पौधा 3–5 फीट की ऊँचाई तक बढ़ता है। इसमें आयताकार नुकीले पत्ते होते हैं और कीप के आकार

के लाल–बैंगनी पुष्प होते हैं। औषधीय रूप में हल्दी के प्रकंद उपयोग किये जाते हैं। हल्दी को उबालने के पश्चात सुखाकर तथा पीसकर इसे पाउडर के रूप में प्राप्त किया जाता है। सूखी हल्दी की जड़ें मसाले का मुख्य स्रोत हैं, जो एक विशिष्ट पीला रंग देता है। हल्दी का इस्तेमाल भोजन में स्वाद और रंग दोनों को बढ़ाने के लिए मुख्य रूप से किया जाता है। हल्दी का उपयोग आयुर्वेदिक चिकित्सा के अलावा चीनी चिकित्सा पद्धति में भी किया जाता है।

आयुर्वेदिक गुण–कर्म एवं प्रभाव

हल्दी में उपस्थित चमत्कारिक औषधीय गुणों के कारण हल्दी को प्रकृति का एक अनमोल वरदान माना जाता है। इसके औषधीय गुण कई बीमारियों से निदान दिलाने एवं शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक होते हैं। विश्व के विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा हल्दी पर किए गए अनुसंधान के अनुसार, इसमें उपस्थित प्रतिउपचायक, सूजनरोधी, केलोरेटिक, रोगाणुरोधी, कैंसररोधक, हिपैटोप्रोटेक्टिव (लिवर को सुरक्षित रखने का गुण), कार्डियोप्रोटेक्टिव (हृदय को सुरक्षित रखने का गुण) और नेफ्रोप्रोटेक्टिव (किडनी को नुकसान से बचाने वाला) गुण विद्यमान होते हैं।

हल्दी के लाभ

1 **कैंसर में उपयोगी:** हल्दी में उपस्थित करक्यूमिन नामक तत्व कैंसर सेल्स की वृद्धि को रोकता है तथा कैंसर युक्त कोशिकाओं को नष्ट करने में मदद करता है।

2 **गठिया में उपयोगी:** हल्दी में उपस्थित प्रतिउपचायक तथा सूजनरोधी गुणों के कारण जोड़ों के दर्द और सूजन को कम करके गठिया रोग में आराम मिलता है।

3 **मधुमेह में उपयोगी:** हल्दी में उपस्थित करक्यूमिन घटक ग्लूकोज के स्तर को नियंत्रित करता है ।

4 **प्रतिरक्षा प्रणाली में उपयोगी:** हल्दी में उपस्थित लाइपोपॉलीसैकराइड रसायन के कारण शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत एवं स्वस्थ रहती है।

5 **अल्जाइमर में उपयोगी:** हल्दी में करक्यूमिन और टरमरोन घटक पाये जाते हैं जो मस्तिष्क की कोशिकाओं की मरम्मत करने में मदद करते हैं जिससे स्ट्रोक और अल्जाइमर जैसे रोगों के उपचार में सहायता मिलती है।

औषधीय उपयोग विधि

1 **हल्दी का दूध के साथ प्रयोग:** दूध के साथ हल्दी का सेवन करना लाभदायक होता है।

2 **हल्दी का पानी के साथ प्रयोग:** हल्दी के पानी का नित्य सेवन करने से शरीर को विभिन्न बीमारियों से दूर रखा जा सकता है।

3 **हल्दी का नीम के साथ प्रयोग:** हल्दी तथा नीम को मिलाकर उसकी गोलियों का सेवन कर सकते हैं।

4 **हल्दी का काली मिर्च के साथ प्रयोग:** हल्दी और काली मिर्च के पाउडर को दूध में मिलाकर उसका सेवन करने से शरीर को विभिन्न बीमारियों से दूर रखा जा सकता है।

सारांश

हल्दी के विभिन्न आयुर्वेदिक एवं औषधीय उपयोगों को देखते हुए यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, हल्दी प्रकृति का एक वरदान है। विश्व के विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा हल्दी पर किए गए अनुसंधानों के अनुसार, इसमें उपस्थित प्रतिउपचायक, सूजनरोधी, केलोरेटिक, रोगाणुरोधी, कैंसररोधक, हिपैटोप्रोटेक्टिव, कार्डियोप्रोटेक्टिव और नेफ्रोप्रोटेक्टिव गुण विद्यमान होते हैं, जो यह प्रदर्शित करता है कि, हल्दी का पौधा मानव जीवन में एक विशिष्ट स्थान रखता है। परन्तु हल्दी की खेती की उचित जानकारी के अभाव एवं जंगली प्रजातियों का अत्यधिक दोहन होने के कारण इसकी कुछ प्रजातियाँ विलुप्त होने की कगार पर हैं, जिनका रख–रखाव एवं संरक्षण किया जाना अति–आवश्यक है, जिससे प्रकृति के इस अमूल्य वरदान से संपूर्ण मानव जाति लाभान्वित होती रहे।

36 औषधियों का कोष – शीत मरुस्थल लद्दाख

सुश्री आस्था चौहान, डॉ. वनीत जिश्टू, सुश्री हसीना बानो एवं श्री पंकज कुमार
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

शीत मरुस्थल का अर्थ है– बर्फ से ढकी वनस्पति रहित भूमि। "शीत मरुस्थल'' उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवीय तथा टुंड्रा प्रदेशों की बर्फ चादर के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला एक सामान्य शब्द है। इन प्रदेशों में न्यूनतम तापमान के कारण वनस्पति बहुत कम उत्पन्न होती है। बेहद ठंडा और शीत जलवायु वाला अंटार्कटिका धरती का सबसे बड़ा शीत रेगिस्तान है, जबकि सहारा सबसे बड़ा गर्म रेगिस्तान है। पृथ्वी के अन्य सबसे बड़े मरुस्थल क्रमशः इस प्रकार हैंः– आर्कटिक, सहारा, अर्ब, गौबी, कालाहारी, ग्रेट विक्टोरिया, पेटागोनियन, सिरिया, ग्रेट बेसिन, चिहाहुआ, ग्रेट सेंडी, कराकुम, कॉलोरैडो और सोनोरान मरुस्थल।

लद्दाख को भारत के ठंडे रेगिस्तान यानी कोल्ड डेसर्ट के नाम से जाना जाता है। लद्दाख उत्तरी भारत का एक केंद्र शासित प्रदेश है, जिसे 31 अक्तूबर 2019 को केंद्र शासित प्रदेश का दर्जा मिला। इसके दो जिले हैं लेह और कारगिल, जो उत्तर में काराकोरम पर्वत और दक्षिण में हिमालय पर्वत के बीच में स्थित हैं। लद्दाख का क्षेत्रफल लगभग एक लाख वर्ग किलोमीटर है। इसके पूर्व में तिब्बत तथा उत्तर में चीन की सीमाएँ हैं। सीमावर्ती स्थिति के कारण सामरिक दृष्टि से इस क्षेत्र का बड़ा महत्व है। यहाँ की जलवायु अत्यंत शुष्क एवं कठोर है, जहाँ पर वार्षिक वृष्टि 3.2 इंच और वार्षिक औसत तापमान 5 डिग्री सेल्सियस है, जिस कारण नदियां दिन में कुछ ही समय प्रवाहित होती है, शेष समय में बर्फ जम जाती है। इस क्षेत्र की मुख्य नदी सिंधु है। विश्व का सबसे ऊँचा एयर स्पेस भी लद्दाख में ही है।

लद्दाख उत्तर पश्चिमी हिमालय के पर्वतीय क्रम में आता है, जहाँ का अधिकांश धरातल कृषि योग्य नहीं है। परंतु फिर भी यह औषधियों का भंडार है। यहाँ पर अनेक प्रकार की औषधियाँ पाई जाती हैं, जो यहाँ के लोगों के जीवन यापन का एक साधन है। ये औषधियाँ दिनचर्या की गतिविधियों में उपयोग की जाती हैं।

जरूरत से अधिक दोहन एवं अत्यधिक व्यापार के कारण ये औषधीय पौधे विलुप्त होने की कगार पर हैं। सतत् उपयोग और संरक्षण पद्धतियों के इस्तेमाल से हम इन्हें विलुप्त होने से बचा सकते हैं। यहाँ के लोगों के द्वारा सामान्य रूप से इस्तेमाल की जाने वाली कुछ औषधियों के नाम और उनके उपयोग कुछ इस प्रकार से हैं :

क्र0 सं0	वैज्ञानिक नाम	लोकल नाम	उपयोग
1.	*रोजा वेबबियाना (Rosa webbiana)*	सेबा (Se-ba)	जहर से जुड़ा बुखार, शरीर से जहर निकालने में, इत्यादि।
2.	*राइब्ज अलपेस्तरे (Ribes alpestre)*	सेरगोड (se-rgod)	तरल द्रव रोग, सूजे हुए अंग, फल का उपयोग करते है– जहर का बुखार, बिषाक्त भोजन, पिताशय के बुखार, महामारी बुखार में
3.	*प्रूनस अर्मेनियका (Prunus armeniaca)*	खम्बू (Kham-bu)	ब्लड सिस्ट, घाव, कफ, तेल का इस्तेमाल बालों की और आंखों के भौंहों के वृद्धि के लिए।

क्र० सं०	वैज्ञानिक नाम	लोकल नाम	उपयोग
4.	*डेल्फिनियम ब्रुनोनियानुम* (*Delphinium brunonianum*)	ब्यार्गोड्स्पोस (Bya-rgod-spos)	जहर, खुजली, महामारी बुखार, त्वचा संबंधी रोग, सर्दी जुखाम, साँप का काटना इत्यादि।
5.	*एफेड्रा जिरार्डियाना* (*Ephedra gerardiana*)	म्शेदुम (mTchedum)	विभिन प्रकार के रक्तस्राव, यकृत रोग, फोड़ा, प्लीहा, मूत्र का नाश, पसीना आना, साँस लेने में तकलीफ।
6.	*रीउम स्पीकिफोर्मे* (*Rheum spiciforme*)	छूर्ट्स (Chhu-rTsa)	हड्डी टूटना, खट्टी डकार, फूला हुआ पेट, कैंसर, गंभीर जीवाणु संबंधी रोग, त्वचा संबंधी विकार, आंतरिक घाव इत्यादि।
7.	*हिपोफे टीबेतियाना* (*Hippophae tibetana*)	स्तरबू (sTar-bu)	फेफड़े क रोग, रक्त वाहिकाओं को अवरुद्ध करने, सीट्स, स्त्रीरोग, रक्त ट्यूमर, ऊँचाई की बीमारी, कफ।
8.	*डेक्टिलोराइजा हताजीरिया* (*Dactylorhiza hatagirea*)	द्बंग्पोलबा (dBang-po-lag-pa)	कायाकल्प शरीर, वीर्य बढ़ाए, गुर्दे की गर्मी, शारीरिक शक्ति मे सुधार, लंबे जीवन इत्यादि।
9.	*एकोनिटम वायो–लोसियम* (*Aconitum violaceum*)	बोंगङानगपो (Bong-nga-Nag-po)	गठिया, सूजन का दर्द, बदन दर्द, आंत के कीड़े, ह्रदय रोग, कुष्ठ रोग, लकवा।
10.	*आर्नेबिया यूक्रोमा* (*Arnebia euchroma*)	डीमोक (Demok)	बालों के लिए टॉनिक और रक्त को साफ करने मे उपयोगी।

1 *हिपोफे टीबेतियाना*

2 *डेल्फिनियम ब्रुनोनियानुम*

3 *राइब्ज अलपेस्तरे*

4 *एफेड्रा जिरार्डियाना*

5 *आर्नेबिया यूक्रोमा*

6 *रोजा वेबबियाना*

37 जैव अर्थव्यवस्था – सतत विकास की कुंजी

श्री अजय कुमार
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

प्रस्तावना

सतत विकास के परिदृश्य में जैव अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत एक नयी अवधारणा है। हरित अर्थव्यवस्था की तरह जैव अर्थव्यवस्था पूरी तरह से सतत विकास के सिद्धांतों पर आधारित है। जहाँ हरित अर्थव्यवस्था को मूल रूप से निम्न कार्बन, संसाधन कुशल और सामाजिक रूप से समावेशी अर्थव्यवस्था के रूप में उल्लिखित किया जाता है, जैव अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जो ऊर्जा सहित वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए अक्षय या जैविक संसाधनों विशेष रूप से बायोमास के उपयोग पर आधारित है। कभी–कभी इसे जैव–आधारित अर्थव्यवस्था के रूप में भी जाना जाता है लेकिन दोनों शब्दों में थोड़ा अंतर होता है।

जैव–आधारित अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से जैविक संसाधनों का इस्तेमाल करके गैर–खाद्य वस्तुओं के उत्पादन से संबंधित है जबकि जैव–अर्थव्यवस्था में जैविक संसाधनों के माध्यम से भोजन और चारे सहित सभी प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन और उपयोग सम्मिलित है। जैव–अर्थव्यवस्था को जैव–प्रौद्योगिकी अर्थव्यवस्था (बायोटेकोनॉमी) के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसका अनुकरण जैव प्रौद्योगिकी उद्योग की उन्नति से जुड़ा है क्योंकि कृषि, वानिकी, पशुपालन, स्वास्थ्य, जैव रसायन और ऊर्जा के क्षेत्र में व्यापक वैज्ञानिक अनुसंधान होने से आनुवंशिक सामग्री का और गहन अध्ययन करने, इसे समझने और इसमें फेर–बदल कर सकने की क्षमता का विकास हुआ और व्यापक तकनीकी प्रगति हुई जोकि निरंतर जारी है। जैव–अर्थव्यवस्था की अवधारणा 1990 के दशक के अंत में अस्तित्व में आई।

वर्ष 1997 में हावर्ड विश्वविद्यालय के जुआन एनरिकेज ने जीनॉमिक्स पर हुए एक सेमीनार में अपने वक्तव्य ''जीनोमिक्स एंड द वर्ल्डस इकोनॉमी'' में 'बायोटेकोनॉमी' शब्द का उपयोग किया, जो 'साइंस' में प्रकाशित हुआ। बाद में 2000 के दशक की शुरुआत में एक नीतिगत एजेंडा के रूप में यूरोपीय संघ और आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओ.सी.ई.डी.) द्वारा जैविक संसाधनों के माध्यम से नवीन उत्पादों और बाजारों को विकसित करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी के व्यापक उपयोग पर बल दिया गया जिसने भविष्य की विकास रणनीतियों के लिए आधार तैयार किया, साथ ही ओ.ई.सी.डी. ने वर्ष 2006 में तथा यूरोपीय संघ ने वर्ष 2012 में विशेष जैव–अर्थव्यवस्था कार्यनीतियाँ तैयार की और विश्व के अन्य कई देशों ने भी इसका अनुसरण किया। वर्ष 2009 में, ओईसीडी ने जैव–अर्थव्यवस्था की नई परिभाषा दी, जिसमें जैव अर्थव्यवस्था को ''जीवन विज्ञान के ज्ञान को नए, टिकाऊ, पर्यावरण–कुशल और प्रतिस्पर्धी उत्पादों में रूपांतरित करने वाली अर्थव्यवस्था'' बताया गया। वर्ष 2012 में, अमेरिका ने जैविक निर्माण विधियों को बढ़ावा देने के संकल्प के साथ राष्ट्रीय जैव अर्थव्यवस्था का एक खाका विकसित किया और जैव अर्थव्यवस्था को ''आर्थिक गतिविधि और सार्वजनिक लाभ बढ़ाने के लिए जीव विज्ञान में व्यापक अनुसंधान और नवाचार के उपयोग'' पर आधारित अर्थव्यवस्था बताया।

जैव अर्थव्यवस्था और संधारणीयता

वैश्विक जनसंख्या में वृद्धि के साथ उपभोग की माँग में निरंतर वृद्धि दर्ज की जा रही है और यह लगातार बढ़ती माँग अर्थव्यवस्थाओं पर पहले से ही समाप्त हो रहे

गैर–नवीकरणीय जीवाश्म संसाधनों के अत्यधिक दोहन के लिए भारी दबाव डाल रही है। यह पर्यावरण असंतुलन और जलवायु परिवर्तन का कारण बन रहा है। जीवाश्म ईंधन के उपयोग को कम करके, जैव अर्थव्यवस्था ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने में भी अर्थव्यवस्थाओं की सहायता करती है और हरित अर्थव्यवस्था की तरह ही जलवायु परिवर्तन को कम करने और उसके अनुकूल बनाने में योगदान देती है।

जैव–अर्थव्यवस्था में खाद्य क्षेत्र सबसे बड़ी भूमिका निभाते हैं। विश्व बैंक के अनुसार, विकसित और विकासशील देशों में (छोटे देशों को छोड़कर जिनकी अर्थव्यवस्था उत्पादन के बजाय सेवाओं पर निर्भर करती है) उपभोग व्यय उनके सकल घरेलू उत्पाद का 70% से अधिक है और कुल खपत व्यय का लगभग आधा भोजन और पेय पदार्थों पर होता है। प्राथमिक जैव–उत्पादों में मूल्यवर्धन के साथ–साथ प्रमुख खाद्य प्रणालियाँ सतत कृषि, सतत वानिकी और सतत मत्स्य पालन हैं। जैव ऊर्जा के साथ–साथ जैवप्लास्टिक/जैवनिम्नीकरणीय प्लास्टिक, जैवनिम्नीकरणीय कपड़े और इको–डिजाइन से संबंधित अन्य उत्पादों जैसे नए जैव–आधारित उत्पादों को जैव–अर्थव्यवस्था में जोड़ा गया है। जैव ऊर्जा कोयले जैसे गैर–नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों पर ऊर्जा निर्भरता को कम करती है और ऊर्जा आपूर्ति की सुरक्षा में सुधार करती है। यह विकास और रोजगार सृजन के नए क्षितिज भी निर्मित करती है।

वन जैव अर्थव्यवस्था

वन से प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं पर आधारित अर्थव्यवस्था को वन जैव अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है। काष्ठ और अकाष्ठ उत्पाद वन के प्रमुख मूर्त उत्पाद हैं, इसलिए, वन जैव अर्थव्यवस्था में काष्ठ और कच्चे अकाष्ठ उत्पादों का उत्पादन, इन उत्पादों पर आधारित कई निर्माण प्रक्रियाएँ तथा वन–आधारित अंतिम प्रसंस्कृत उत्पादों के उपयोग सम्मिलित हैं। विभिन्न मूर्त उत्पादों के अतिरिक्त, पारिस्थितिकी तंत्र सेवायें जैसे कि पारिस्थितिक पर्यटन भी वन जैव अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण घटक है। जैव–प्रौद्योगिकीय प्रगति हुई है और वस्त्रों के उत्पादन (विशेष रूप से बांग्लादेश में), विभिन्न रसायनों, इत्र, जैव ईंधन, दवा, कोटिंग्स, गोंद, स्मार्ट पैकेजिंग, भोजन और चारा, आदि के लिए भी अब वन बायोमास का इस्तेमाल किया जाने लगा है। सी.डी.एम., आर.ई.डी.डी. और इसी तरह के अन्य तंत्रों के माध्यम से कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग शुरू करने के बाद कार्बन पृथक्करण भी इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है।

जैव–अर्थव्यवस्था को मापने और प्राप्त करने में चुनौतियाँ

विश्व के राजनेताओं द्वारा जैव अर्थव्यवस्था पर विचार किया जा रहा है और इसने कुछ राजनीतिक ध्यान भी आकर्षित किया है, लेकिन इसका वास्तविक परिनियोजन वांछित गति प्राप्त नहीं कर रहा है। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि इसके दायरे और इसके मुख्य चालकों सहित जैव अर्थव्यवस्था की अवधारणा को समझने के बारे में अभी भी आम सहमति की कमी है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के अनुसार, जैव–अर्थव्यवस्था के संदर्भ में तीन मुख्य धारणाएँ हैं, पहली जीवाश्म कार्बन को बदलने के बारे में है, दूसरी जैव–प्रौद्योगिकीय अन्तःक्षेप में वृद्धि के बारे में है और तीसरी पारिस्थितिक रूप से सतत तरीके से उपलब्ध जैविक संसाधनों के उपयोग को बढ़ाने के बारे में है। एक अन्य चुनौती जैव–अर्थव्यवस्था के लिए विभिन्न क्षेत्रों से सांख्यिकीय डेटा का संग्रह और समावेश है। एक सामान्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण सभी जैव–अर्थव्यवस्था क्षेत्रों के आँकड़ों को जोड़कर कुल अर्थव्यवस्था में जैव–अर्थव्यवस्था के योगदान को प्रदर्शित कर सकता है। लेकिन जैव–अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में बहुत अधिक विविधता है और विशेष रूप से तब जब कोई क्षेत्र जैसे कि स्वास्थ्य और वस्त्र पूरी तरह से

जैव–अर्थव्यवस्था में नहीं आ रहा हो।

विभिन्न आर्थिक गतिविधियों, व्यापार और उत्पादों के वर्गीकरण की प्रचलित अंतर्राष्ट्रीय प्रणालियों की परिकल्पना जैव–अर्थव्यवस्था को वर्गीकृत करने के लिए नहीं की गई है। उनके वर्गीकरण मानदंड जैव या गैर–जैव इनपुट के बीच कोई अंतर नहीं करते हैं। यहाँ तक कि देशों के सकल घरेलू उत्पाद को मापने के लिए राष्ट्रीय खातों की अच्छी तरह से स्वीकृत प्रणाली भी जैव–अर्थव्यवस्था के मापन के लिए उपकरण प्रदान नहीं करती है।

वास्तव में, कई संकेतकों के लिए डेटा के संग्रह का कोई नियमित अभ्यास नहीं है और जो भी डेटा उपलब्ध है, वह भी पूर्ण नहीं है, जिससे कुछ संकेतकों का अनुमान लगाना मुश्किल हो जाता है। इन चुनौतियों का निवारण करने के लिए एफ.ए.ओ. ने 2019 में जैव अर्थव्यवस्था की निगरानी और मूल्यांकन के लिए भागीदारी दृष्टिकोण पर आधारित एक विस्तृत चरणवार रूपरेखा बनाई है जिसका उपयोग कुछ देश अपनी जैव अर्थव्यवस्था को मापने के लिये कर रहे हैं।

ऐसी आशंका है कि जैव–अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था के पारिस्थितिकीकरण के बजाय जैविक संसाधनों के आर्थिक वस्तुकरण की ओर ले जा सकती है। उदाहरण के लिए, जीवाश्म संसाधनों को नए बायोमास के साथ बदलने से कृषि और वानिकी पर भारी दबाव पड़ेगा, जो पहले से ही विकृत स्थिति में हैं। जैव–अर्थव्यवस्था जैव–उत्पादों के उत्पादन, निर्माण, विपणन और उपयोग प्रक्रिया में जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों के अधिक से अधिक अन्तःक्षेप की वकालत करती है। विकासशील देशों में अधिकांश किसान कृषि क्षेत्र में तकनीकी प्रगति के संपर्क में नहीं हैं और अभी भी खेती के पारंपरिक तरीकों पर निर्भर हैं। इस प्रकार, तकनीकी बेरोजगारी का खतरा हो सकता है। ये बिंदु संतुलित नीतियों की आवश्यकता की माँग को रेखांकित करते हैं।

भारत की जैव अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था भी जैव–अर्थव्यवस्था में अपने संक्रमण काल की ओर तेजी से बढ़ रही है। इसकी क्षमता को दुनिया ने बड़े पैमाने पर कोविड–19 महामारी संकट के दौरान माना है। भारत ने अपनी विशाल आबादी की घरेलू जरूरतों को पूरा करने के साथ–साथ कई देशों को कोविड–19 टीकों की आपूर्ति की है। जैव प्रौद्योगिकी उद्योग अनुसंधान सहायता परिषद (बी.आई.आर.ए.सी.) वर्ष 2020 से भारत की जैव अर्थव्यवस्था पर वार्षिक रिपोर्ट (बी.आई. आर.ए.सी., 2020, 2021, 2022) प्रकाशित कर रही है और उनके अनुमान के अनुसार 2021 में भारत की जैव अर्थव्यवस्था का मूल्य 80.12 बिलियन डॉलर (देश की जीडीपी का 2.6%) आँका गया है जो कि वर्ष 2019 में +62. 5 बिलियन, 2018 में +51 बिलियन और 2017 में +44.47 बिलियन था। भारत की जैव–अर्थव्यवस्था में वर्ष 2030 तक +270–300 बिलियन तक पहुँचने की क्षमता है जो भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 3.3–3.5% हिस्सा है। बी. आई.आर.ए.सी., 2022 के अनुसार बायोफार्मा का योगदान +39.4 बिलियन है जो कि कुल जैव–अर्थव्यवस्था का 49 प्रतिशत है। वर्ष 2022 के दौरान, रिपोर्ट ने विशेष रूप से कोविड अर्थव्यवस्था की गणना की और यह कुल जैव अर्थव्यवस्था का लगभग 18% था। ये अनुमान विशेष रूप से जैव प्रौद्योगिकी उद्योग की अर्थव्यवस्था को प्रदर्शित करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि ये भारत की जैव प्रौद्योगिकी अर्थव्यवस्था के अनुमान हैं। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने बायोटेक स्टार्ट–अप एक्सपो–2022 का उद्घाटन करने के बाद संबोधन के दौरान कहा कि जिस गति से भारत में जैव प्रोद्योगिकी के विकास हुआ है, भारत जैव प्रोद्योगिकी के वैश्विक इको–सिस्टम में शीर्ष –10 देशों की कतार में पहुंचने से बहुत दूर नहीं है।

38 हरित हाइड्रोजनः भविष्य की उर्जा

श्री अवनीश कुमार
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

आजकल हरित हाइड्रोजन वैश्विक चर्चा का विषय बना हुआ है, विशेष रूप से तब जब दुनिया अपने सबसे बड़े ऊर्जा संकट का सामना कर रही है और जलवायु परिवर्तन का खतरा वास्तविकता में बदलता हुआ दिख रहा है।

हाइड्रोजन एक प्रमुख औद्योगिक ईंधन है जिसके विभिन्न प्रकार के अनुप्रयोग हैं। पारंपरिक रूप से कोयले के प्रयोग से निर्मित हाइड्रोजन को ब्लैक या ब्राउन हाइड्रोजन कहा जाता है। हाइड्रोजन ब्रह्मांड में सबसे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है लेकिन शुद्ध हाइड्रोजन की मात्रा अत्यंत ही कम है। यह लगभग हमेशा ऑक्सीजन के साथ H_2O या अन्य यौगिक रूपों में मौजूद होता है। लेकिन जब विद्युत धारा जल से गुज़रती है, तो इलेक्ट्रोलिसिस के माध्यम से इसे मूल ऑक्सीजन और हाइड्रोजन में खंडित करती है। यदि इस प्रक्रिया के लिये उपयोग की जाने वाली विद्युत का स्रोत, पवन या सौर ऊर्जा जैसे नवीकरणीय स्रोत हों तो इस प्रकार उत्पादित हाइड्रोजन को हरित हाइड्रोजन कहा जाता है।

हरित हाइड्रोजन की उपयोगिता को देखते हुए केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन, जिसकी लागत 19,744 करोड़ रुपए है, को मंज़ूरी दी है। इसका उद्देश्य भारत को हरित हाइड्रोजन के उपयोग, उत्पादन और निर्यात के लिये 'वैश्विक केंद्र' बनाना है। इस मिशन से हरित हाइड्रोजन के व्यावसायिक उत्पादन को प्रोत्साहित करने और भारत को ईंधन का शुद्ध निर्यातक बनाने में मदद मिलेगी। इसके परिणामस्वरूप जीवाश्म ईंधन के आयात में 1 लाख करोड़ रुपए से अधिक की शुद्ध कमी के साथ–साथ वार्षिक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में लगभग 50 मीट्रिक टन की कमी आएगी।

हरित हाइड्रोजन वर्तमान में वैश्विक हाइड्रोजन उत्पादन का 1% से भी कम उत्पादन होने के कारण उपभोग हेतु अत्यधिक महँगा है। विदित है कि विश्व स्तर पर हरित हाइड्रोजन का विकास अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है, जबकि भारत में हरित हाइड्रोजन के उत्पादन हेतु भौगोलिक स्थिति अनुकूल होने के साथ–साथ धूप और हवा की प्रचुर उपलब्धता है।

प्रति यूनिट भार में उच्च ऊर्जा सामग्री के कारण हाइड्रोजन ऊर्जा का एक बड़ा स्रोत है। ग्रीन हाइड्रोजन विशेष रूप से शून्य उत्सर्जन के साथ ऊर्जा के सबसे स्वच्छ स्रोतों में से एक है। इसका उपयोग कारों के लिये ईंधन सेल के रूप में या उर्वरक और इस्पात निर्माण जैसे अत्यधिक ऊर्जा खपत वाले उद्योगों में किया जा सकता है। दुनिया भर के देश हरित हाइड्रोजन क्षमता के निर्माण पर काम कर रहे हैं क्योंकि यह ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित कर सकता है और कार्बन उत्सर्जन को कम करने में भी मदद कर सकता है।

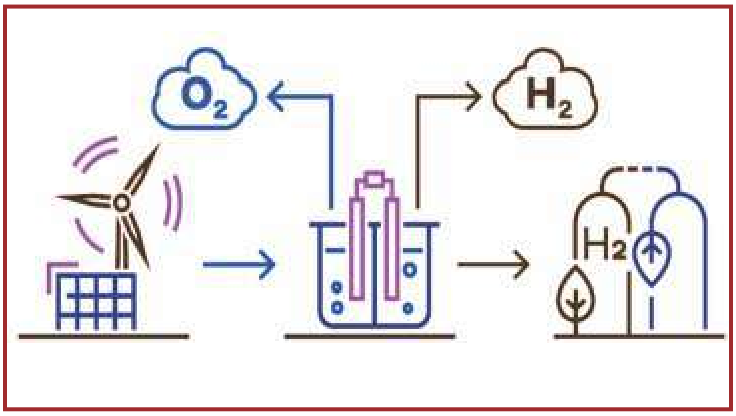

नवीकरणीय ऊर्जा से हरित हाइड्रोजन का निर्माण

39 पर्यावरण और धर्म

श्री दीना नाथ पाण्डेय
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

भारत वर्ष को विश्व का सबसे बड़ा और श्रेष्ठ लोकतंत्र होने का गौरव प्राप्त है। भारतीय संस्कृति, पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण और सकारात्मक भूमिका रखती है। प्रकृति को वैज्ञानिक और संतुलित बनाये रखने के लिए मानव और प्रकृति के बीच अटूट रिश्तों की चर्चा हमारे ग्रंथों में लिखी गयी है। हमारे शास्त्रों में पेड़–पौधें, पुष्पों, नदियों, सरोवर, वन, मिट्टी और पत्थर भी पूज्य माने जाते हैं। यहाँ के पर्व और त्यौहार प्राकृतिक संसाधनों से सम्बंधित है। हमारा यह चिंतन पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए सार्थक एवं संरक्षण के लिए बहुमूल्य है।

आरंभिक काल से सनातन धर्म में पूजा–पाठ का विशेष महत्व रहा है। यहाँ 33 कोटि देवी–देवताओं की पूजा होती रही है और साथ ही प्रकृति की पूजा भी होती रही है। ग्रहों में प्रथम सूर्य को प्रकाश और ऊर्जा का एकमात्र स्रोत न मानकर उनको देवता के समान पूजा जाता है। अन्य ग्रहों का भी अलग– अलग महत्व रहा है और पूज्यनीय माना गया है। धरती और नदियों को माता की संज्ञा दी गयी है। पर्वतों और वृक्षों को भी देव–तुल्य मानते हुए उनकी पूजा होती रही हैं।

सनातन धर्म में होने वाले कर्म–कांड में पेड़–पौधों का भी विशेष उपयोग होता है। पान के पत्ते और सुपारी को शुभ मानते हुए प्रत्येक पूजा में उपयोग किया जाता है। पञ्च–पल्लव के रूप में आम, पीपल, बरगद, पाकर और गुल्लर के पत्तो से कलश और घर के मुख्य द्वार को सुशोभित करते है। अशोक या केले के तनों व पत्ते से तोरण द्वार बनाये जाते है। हवन–पूजन समिधा के रूप में आम, मदार, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गुल्लर, शम्मी आदि को जलाकर घर में सुख–शांति के लिए प्रार्थना की जाती है। शादी–विवाह के कार्यक्रम में वंश वृद्धि की उत्तम कामना से वंशरोपण (बाँस या बाँस की टहनी) की पूजा की जाती है।

विभिन्न पेड़ों में देवता का निवास और देव–तुल्य मानकर उसे नहीं काटने को कहा जाता है। अलग–अलग पर्वो में यथा वट सावित्री पूजा में बरगद, शनि गृह की शांति एवं सोमवती अमावस्या को पीपल की पूजा, कार्तिक मास में तुलसी और आँवला के पेड़ की पूजा, चैत्र मास में नीम की पूजा आदि के बारे में हमारे ग्रंथो में चर्चा की गयी है। झारखण्ड में आदिवासी लोग द्वारा सरहुल और कर्मा जैसे पर्व में क्रमशः सरना और करम के पेड़ की पूजा की प्रथा चली आ रही है। हिन्दू धर्म में मृत्यु पश्चात् दाह–संस्कार के लिए भी चन्दन, आम आदि वृक्षों के लकड़ी का उपयोग किया जाता है।

हमारी संस्कृति पर्यावरण संरक्षण प्रधान रही है जिससे प्रदूषण पर नियंत्रण रखा जा सकता है। हमारे कई रचनाकार ने प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया है कि इसके विनाश की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत गीता, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुंतलम, जैसी कृतियाँ आज के व्यवस्था के अनुरूप व न्यायसंगत है। इन कृतियों में नैतिक अनुशासन, आत्मसंयम और त्याग पर बल दिया गया है। हमारी संस्कृति पर्यावरण के संरक्षण में वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी का सूत्र प्रदान करती है जिसमें संकीर्णता, धर्मान्धता, घृणा आदि का कोई स्थान नहीं है। परन्तु आज हम सभी अपने अनंत स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपनी सभ्यता और संस्कृति से समझौता कर पूंजी और विकास को जीवन का आधार मानकर अपने प्राणों के रक्षक पर्यावरण को नष्ट करते जा रहे है। आज इस बात की आवश्यकता है कि निष्ठापूर्वक समस्त जन समुदाय को पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण से उत्पन्न चुनौती से लड़ने के लिए उचित कदम उठाने का प्रयास करना चाहिए।

भारत में बहुत सारे तीर्थ स्थल है, जहाँ लोग अपने परिवार की सुख–शांति की कामना से भ्रमण करते है। इस तरह की यात्रा के पीछे यह भी प्रावधान रखा गया कि मानव विभिन्न जगहों की भौगोलिकता, पर्यावरण का ज्ञान, मनोरंजन के स्थल, अभ्यारण्य, सरोवर, झीलों आदि का शुभ दर्शन कर सकते है, वहाँ के जीवनचर्या के तौर तरीके सीख सके। साथ ही मानव नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर मानसिक शांति की अनुभूति करते है। मानव के प्राणों एवं पवित्रता की सुरक्षा प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा पर निर्भर करती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जिस मानव को आध्यात्मिक अनुभूति हो जाती है, वह अल्प साधनों से ही अपने हितों की पूर्ति कर सकता है, वह हर तरह के आर्थिक व सामाजिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

लेकिन विगत कुछ वर्षों से हम तीर्थों के आस–पास के वातावरण को प्रदूषित ज्यादा करने लगे हैं। अपने उपयोग के पश्चात् शेष कचरे को वहाँ फेक देते हैं साथ ही पॉलिथीन, प्लास्टिक बोतलें, रद्दी कागजों को कूड़ेदान में न डालकर हम यत्र–तत्र फेंक देते हैं जिससे गंदगी के कारण धाम के आस–पास का वातावरण प्रदूषित हो जाता है। अतः हम सभी का कर्तव्य बनता है कि तीर्थों में या दर्शनीय स्थलों पर गंदगी फैलाने से बचे। इन स्थलों की सुन्दरता और सौम्यता बनाये रखने के प्रति हम सबसे ज्यादा जिम्मेवार है, जिससे अन्य प्रदेशों या विदेशों से आने वाले सैलानियों को स्वच्छता के साथ हमारी संस्कृति के प्रति सुन्दर भावना की पहचान हो सके।

पर्यावरण संरक्षण के लिए पौधरोपण विशेष जरूरी है। हम अपने भौतिक सुख के लिए नित्य वृक्षों का दोहन करते जा रहे है, जिसके कारण भारत में वनों की प्रतिशतता में कमी आयी है और अगर यह यूँ ही दोहन होता रहा, तो एक दिन हमारी धरती वीरान व बंजर हो जाएगी। भारत के तीर्थ एवं दर्शनीय स्थलों पर नित्य ढेर सारे सैलानी भ्रमण पर आते है उन सैलानियों को पौधरोपण के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। बिहार के गया और तमिलनाडु के रामेश्वरम में बहुत सारे श्रद्धालु अपने पितरों को मोक्ष प्रदान करने हेतु पिंड–दान करने जाते है। उन श्रद्धालुओं को अपने पितरो के नाम पर ही पौधरोपण के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसके लिए पर्यटन विभाग और पर्यावरण एवं वन विभाग में एक समझौता किया जा सकता है जिसमें पर्यावरण एवं वन विभाग पौधरोपण के लिए स्थान और उसकी पालन–पोषण की जिम्मेवारी का निर्वहन करे। श्रद्धालुओं से एक छोटी नियत राशि लेकर उनके पितरों के नाम से अभिलेखित पौधों का रोपण किया जाये।

बिहार के भागलपुर जिले के नवगछिया प्रखंड के धरहरा गाँव में बेटी के जन्म पर पौधे रोपने की परम्परा विश्वविख्यात है। इस गाँव के ग्रामीणों ने एक अनूठी परंपरा का विकास किया कि जिस घर में बेटी का जन्म हो, तो बेटी के नाम पर 10 फलदार वृक्ष लगाये जायेंगे। वर्षों पूर्व आरंभ की गयी यह परंपरा, आज गाँव की संस्कृति बन गयी है। एक समय इस गाँव में पेड़ कहीं–कहीं नजर आते थे लेकिन आज यह गाँव पेड़ों से भरा पड़ा है। इन पेड़ों से जहाँ गाँव में हरियाली आ गयी है, वहीं ग्रामीण आर्थिक रूप से सबल हो रहे है। आज ग्रामीण अपने बेटियों के जन्मदिन के साथ–साथ इन पेड़ों का भी जन्मदिन उत्साह पूर्वक मनाते हैं।

आज जब धरती से वनों की प्रतिशतता में कमी आ रही है तो अब हम मानव जाति को सचेत और सजग हो जाना चाहिए और यथा संभव वृक्षारोपण में अपनी भागीदारी करनी चाहिए। जब भी हम फलों का सेवन करें तो यह प्रयास करें कि फलों से निकले बीजों को एकत्र कर रख लें और यात्रा करते समय खाली स्थानों पर बीजो को फेंकते जाये, उचित समय आने पर वे एक पेड़ का रूप स्वतः ले लेंगे।

हमारे ये छोटे–छोटे प्रयास हमारे पर्यावरण संरक्षण में एक महत्वपूर्ण कदम होंगे। वृक्ष को धरती का आभूषण माना गया है, तो हमारा यह प्रयास होना चाहिए कि अपनी धरती को आभूषित करें, जिसका लाभ हमारे आने वाली पीढ़ियों को मिले।

40 ट्रांस-हिमालयः एक अनूठा पारितंत्र

श्री दुष्यंत कुमार
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

प्रकृति, हमारे चारों ओर विद्यमान सबसे बड़ी शाश्वत सच्चाई है, जिसे हम हर पल अपनी ज्ञानेन्द्रियों से देख, सुन, स्पर्श और महसूस कर सकते है। कुदरत का अनंत सौंदर्य, सदियों से मनुष्य के लिए सुख और आनंद का पर्याय रहा है। इसीलिए, हमारे वेदों, उपनिषदों और पुराणों में, प्रकृति और मनुष्य के गहरे संबंध का बहुतायत में वर्णन मिलता है। भारतीय साहित्य में भी मानव और प्रकृति के बारे में कई कृतियाँ लिखी गई हैं। वास्तव में, प्रकृति शब्द "परा" और "कृति" दो शब्दों से मिलकर बना है। परा का अर्थ है सबसे उत्तम या श्रेष्ठ और कृति का अर्थ है सृजन। पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वन एवं वनस्पतियाँ, अनेकों किस्म के जीव–जंतु और तरह –तरह के पारितंत्र, भगवान द्वारा सृजित प्रकृति के विविध स्वरूप एवं अनूठी रचनाएँ हैं। हमारे देश में उत्तर की ओर स्थित, ट्रांस–हिमालय का क्षेत्र भी ऐसी ही एक विशिष्ट जैव–भौगोलिक इकाई है, जिसका भौतिक और जैविक दृष्टिकोण से अद्वितीय महत्व है। इंडियन ट्रांस–हिमालय का सम्पूर्ण भू–भाग वर्षा छाया (रेन–शैडो) क्षेत्र के अंतर्गत आता है और यहाँ बहुत कम वर्षा (<50 मि.मी.) होती है। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में तीक्ष्ण पैरा–बैंगनी किरणें, तापमान में अधिक उतार–चढ़ाव, अत्यधिक शुष्कता, कम वायुमंडलीय दबाव, कम ऑक्सीजन, तेज हवाएँ और सर्दियों के दौरान भारी बर्फबारी होती है। समुद्रतल से औसतन 4000 मीटर से अधिक ऊँचाई पर स्थित, मरुस्थलीय वातावरण से सदृश्यता के कारण इस विलक्षण भू–भाग को सामान्य तौर पर शीत–मरुस्थल या ठंडे रेगिस्तान के रूप में जाना जाता है। हमारे देश में लगभग 1,86,200 वर्ग कि.मी. का क्षेत्र ट्रांस हिमालय में फैला हुआ है और यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 6% से अधिक हिस्से को निरूपित करता है।

एशिया महाद्वीप में, ट्रांस–हिमालय का अधिकतर भाग पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन और तिब्बत के अंतर्गत आता है। जबकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में, वृहद व विशाल हिमालय (ग्रेटर हिमालय) की उत्तरी शिखा रेखा में जांस्कर और काराकोरम पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ भू–खंड ट्रांस–हिमालय को निरूपित करता है। इसमें मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश के लाहौल व स्पीति जिले की स्पीति घाटी, किन्नौर जिले का पूह उप–मंडल,केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख,

ट्रांस–हिमालयन स्पीति–घाटी में बसा एक छोटा गाँव

उत्तराखंड में पिथौरागढ़ व चमोली के भाग और सिक्किम राज्य के ऊपरी हिस्से भी सम्मिलित है। भारतीय ट्रांस हिमालय अनूठा और विशिष्ट क्षेत्र है, और यहाँ का सम्पूर्ण परिदृश्य ही प्रकृति द्वारा प्रदत्त अद्भुत विशेषताओं से भरा पड़ा है। जिसमें सिंधु, श्योक, द्रास, कार्गिल, नुब्रा, सुरु, चांगथांग, रोपा, हांगों, पिन्न, स्पीति इत्यादि विभिन्न घाटियां विषमता और सुंदरता का बेजोड़ मेल प्रस्तुत करती है। इन घाटियों में हिमाच्छादित ऊंचे–ऊंचे दर्रे; दूर–दूर तक फैली बंजर–वीरान स्थलाकृतियाँ, प्राकृतिक झीलें, हिमनदो (ग्लेशियरों) से निकलने वाले नदी–नाले,दुर्लभ वन्यप्राणी एवं औषधीय पौधे, जगह–जगह पर स्थित अध्यात्मिकता के जीवंत स्थल बौद्ध–मठ एवं गोम्पा, वनस्पतिविहीन मिट्टी के नग्न पहाड़ों पर आश्चर्यजनक रूप से बसे गाँव, सादा जीवन शैली वाले सरल स्वभाव के लोग सभी कुछ तो विशिष्ट एवं अलग प्रतीत होते है। ट्रांस हिमालयी शीत मरुस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र की इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे **'वंडर लैंड ऑफ इंडिया'** की उपमा प्रदान की जाती है।

हिमालय के अन्य क्षेत्रों की तुलना में ट्रांस–हिमालय में जलवायु की विषम परिस्थितियों और अत्यधिक शुष्कता के कारण वनस्पति बहुत कम और विरल है। परंतु यह क्षेत्र अद्भुत स्थानिक जैव–विविधता को प्रदर्शित करता है। ट्रांस–हिमालय में वनस्पतियों और जीवों की कई दुर्लभ और विशेष किस्में पायी जाती है। कठोर जलवायु परिस्थितियों एवं शुष्क वातावरण में वास करने के लिए यहाँ पाये जाने वाले जीवों और वनस्पतियों में विशेष प्रकार के अनुकूलन देखने को मिलते है। वनस्पतियों में, मुख्य रूप से भोजपत्र, जूनीपर, विलो और पॉपुलर के पेड़ और कई प्रकार की कंटीली और बौनी झाड़ियों का प्रभुत्व रहता है। पौधों का जड़–तंत्र व्यापक रूप से विकसित होता है, जो उच्च वेग वाली हवाओं में पौधों को दृढ़ बनाए रखने के अलावा सर्दियों के दौरान आवश्यक खाद्य भंडारण का कार्य भी करता है। महत्वपूर्ण झाड़ीदार प्रजातियों में जुनिपर, छरमा (हिप्पोफे) सिया (*रोजा वेबियाना*), सोमलता (*एफेड्रा जियारडियाना*) इत्यादि शामिल है। छोटे शाकीय पौधो में रत्न जोत, सलामपंजा, कड्डु, खुरसानी अजवाईन, पुष्करमूल और मन्नू आदि उच्च औषधीय गुणों वाली बहुत सारी बहुमूल्य जड़ी–बूटियाँ मिलती है,जिनका उपयोग व्यापक रूप से अमची या तिब्बती चिकित्सा पद्धति में किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिकों द्वारा, ट्रांस–हिमालयी क्षेत्रों से स्तनधारियों, पक्षियों, मछलियों, सरीसृपों और उभयचरों जीवों की विविध प्रजातियाँ रिपोर्ट की गई हैं। यहाँ पर पाये जाने वाले वन्य जीवों में हिम तेंदुआ, लाल लोमड़ी, तिब्बती भेड़िया, किआंग, हिमालयन आइबेक्स, हिमालयन मर्मोट, हिमालयन ब्लू शीप इत्यादि प्रमुख प्रजातियाँ है। शीत मरुस्थलीय पक्षियों में मुख्यतया हिमालयन स्नो कॉक, गोल्डन ईगल, चुकरपैट्रिज, स्नो पैट्रिज, ब्लू रॉक पिजन, स्नो पिजन, लैमर्जियर शामिल है। लद्दाख बैंडेड अपोलो और रेड अपोलो किस्म के तितलियों की कुछ दुर्लभ प्रजातियाँ ट्रांस–हिमालय में पायी जाती हैं। ठंडे रेगिस्तान में पायी जाने वाली प्राकृतिक झीलें प्रवासी पक्षियों की विविध प्रजातियों के लिए जलीय पारितंत्र के रूप में उपयुक्त

शीत मरुस्थलीय जलीय पारितंत्र

आवास प्रदान करती हैं। इस प्रकार की विशेष जैव विविधता सम्पन्न अवयवों की उपस्थिति के कारण ही ट्रांस–हिमालय का राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर अत्यधिक महत्व है।

भारतीय शीत–मरुस्थलीय पारितंत्र न केवल जैव–विविधता का केंद्र है अपितु यह मानव के लिए भोजन, पानी, वायु, परागण, औषधीय पौधों और आवास के रूप में बहुत सारी पारिस्थितिक सेवाएँ प्रदान करती है। भारतीय उप–महाद्वीप की प्रमुख नदी प्रणालियाँ–सिंधु, चिनाब, सतलुज, भागीरथी–अलकनन्दा आदि का उद्‌गम स्थल भी ट्रांस–हिमालय में है।

वास्तव में, भारतीय ट्रांस–हिमालय का सारा क्षेत्र आकर्षक परिदृश्यों, अतुल्य संस्कृति तथा शानदार जैव–विविधता का सुंदर समावेश है। शहरों के शोरगुल और बड़े नगरों की भागम–भाग भरी जिंदगी से दूर ट्रांस–हिमालय में न केवल प्रकृति के मंत्रमुग्ध करने वाले स्वरूप के सदृश साक्षात्कार होते हैं, अपितु मनुष्य, प्रकृति और अध्यात्म के गहरे संबंध का भी बोध होता है। शीत–मरुस्थलीय पारिस्थितिकी और जैव विविधता पर लगातार बढ़ते मानवीय दबाव और जलवायु परिवर्तन के कारण इस नाजुक पारिस्थितिकी तंत्र पर गंभीर खतरा उत्पन्न हो रहा है। यहाँ की कुछ वनस्पतियाँ और वन्यजीव की प्रजातियाँ या तो विलुप्त हो चुकी हैं या उन्हें संकटग्रस्त श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। विशेषज्ञों के अनुसार, हिम तेंदुआ और हिमालयन मर्मोट जैसी संवेदनशील प्रजातियों पर जलवायु परिवर्तन के स्पष्ट प्रभाव देखने को मिल रहे हैं। बहुत जरूरी है कि ट्रांस–हिमालय की जैव विविधता, जीवन, संस्कृति, पारिस्थितिक और पर्यावरणीय मूल्यों के संरक्षण पर अधिकाधिक जोर दिया जाए और इस धरा पर पर प्रकृति का वैभव चिरकाल तक बना रहे।

कृषि–वनवर्धन (एग्री–सिल्वी) प्रणाली

कृषि– बागवानी (एग्री–होर्टी) प्रणाली

लाहौल घाटी में उगाई जा रही सब्जियों की विदेशी किस्में

लाहौल घाटी का मनोरम दृश्य

कृषि के साथ पर्यटन का संयोजन

41 प्लास्टिक का विकल्पः समय की माँग

श्रीमती नीलू सिंह
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

दोना/पत्तलों पर भोजन परोसना भारत में अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक, औषधीय और सामाजिक तथा आर्थिक महत्व की एक लंबी परंपरा रही है। ऐसा माना जाता है कि दोना/पत्तलो पर परोसा जाने वाला भोजन किडनी, लिवर, कण्ठ और पित्त दोष विकार आदि के लिए उपयोगी होता है। महत्वपूर्ण पॉलीफिनोलिक यौगिकों की बहुतायत के कारण पत्तियाँ जीवाणुरोधी और फफूँदनाशक गुणों से युक्त होती हैं, जो पत्तियों से भोजन में समावेशित हो जाते है और उन्हें आदर्श प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट के रूप में बनाते हैं। प्लेटे, कप, रैपिंग और पैकिंग सामग्री के रूप में साथ ही पत्तियों का उपयोग कैंसर जनक प्लास्टिक के उपयोग को कम करने के लिए एक पर्यावरण के अनुकूल विकल्प है। इसके अलावा, पत्तियों के सतत् उपयोग से आजीविका सृजन की भी अपार संभावनाऐं हैं। दोना/पत्तलों के निर्माण में उपयोग होने वाली साधारण हस्तचालित मशीन का अनुमानित मूल्य 20–50 हजार रुपये और स्वचालित मशीन का मूल्य 1 लाख से 5 लाख रुपये तक है।

भारत में संयुक्त रूप से सभी खाद्य वितरण एग्रीगेटर्स द्वारा हर महीने लगभग 22,000 मीट्रिक टन प्लास्टिक कचरा (स्रोत: डाउन टू अर्थ) का उपभोग किया जाता है। इन कंपनियों द्वारा पत्ती आधारित बर्तनों को अपनाने के लिए एक सक्रिय कदम तथा प्लास्टिक कचरे को कम करने और अंततः खत्म करने की दिशा में एक बड़ा कदम होगा। एक आदिवासी आजीविका कार्यकर्ता के अनुसार, शहरी भारतीय परिवारों को अपने अपशिष्ट–उत्पादक प्लास्टिक के बर्तनों के उपयोग को छोड़ देना चाहिए और पत्ती आधारित कटलरी जो एक शून्य–उत्सर्जन उत्पाद है उसका इस्तेमाल करना चाहिए। बायोडिग्रेडेबल कटलरी में बदलाव से मिट्टी समृद्ध होगी, कार्बन पदचिह्नों को कम करेगी, वनों की कटाई को रोकेगी और इसलिए जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करेगी। साथ ही पत्ती कटलरी का उपयोग करने का सबसे बड़ा लाभ भारत की आदिवासी आबादी को होगा, जोकि परंपरागत रूप से इसे बनाते हैं।

एक जुलाई, 2022 से सरकार द्वारा सिंगल यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। एक बार फिर पारंपरिक भारतीय पत्ती कटलरी पर संभावित विकल्प के रूप में भी सबका ध्यान आकर्षित किया है। सिंगल यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध के परिणामस्वरूप लीफ निर्मित प्लेट और चम्मच का उपयोग हो सकता है।

मध्य भारत के कुछ राज्यों जैसे मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, ओड़िशा व दक्षिण भारत में भी पत्तों का उपयोग बहुतायत से होता रहा है। लगभग 50 लाख ओड़िशा के आदिवासियों के लिए यह आजीविका का साधन है। मध्य भारत के वनों से माहुल/सियाली और पलाश के पत्तों तथा उत्तर पूर्व में आड़ू के रंग के सुपारी के पत्तों से कटलरी बनाई जाती है। इसके अलावा, केले के पत्ते की प्लेटें का उपयोग, जो परंपरागत रूप से दक्षिणी भारत में उपयोग की जाती है

दोना पत्तल/प्लेट/सामाग्री बनाने मे उपयोगी पत्तियाँ

वृक्षः	उपिला
साल	जंगली दालचीनी
पलास	स्क्रू–पाइन
सुपारी	पलमायरा पाम
सागौन	

कनक–चंपा	**बेल/लता/शाक**
कटहल	माहुल/मालू
बरगद	कमल
तिमला	हल्दी
पीपल	अरबी
पिलखन	भारतीय बीन

इस तरह के बर्तनों के लिए ओड़िशा, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात और आंध्र प्रदेश के कुछ हिस्सों में बड़े संभावित बाजार हैं। यदि प्रोत्साहन दिया जाए तो वैकल्पिक कटलरी के लिए इस बाजार को विकसित करना बहुत संभव है।

भारत में पत्ती आधारित कटलरी का बाजार 2,000 करोड़ रुपये का है। अकेले ओड़िशा ही वन क्षेत्र में बेटनोटी का 400 करोड़ रुपये मूल्य के साल लीफ पत्ती कटलरी का उत्पादन करता है। वनवासियों के लिए प्लास्टिक आधारित बर्तनों से पौधे आधारित कटलरी का बड़े पैमाने पर प्रतिस्थापन एक गेम चेंजर हो सकता है। घरेलू बाजार के अलावा भारतीय पत्ती आधारित कटलरी की अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भी भारी माँग है। एक जर्मन स्टार्टअप, लीफ रिपब्लिक, अपनी पंजीकृत भारतीय कंपनी, बिलोटेक से लीफ प्लेट्स का आयात करता है। पंजीकृत भारतीय कंपनी विलोटेक जर्मन बाजार में पहुँचने से पहले पत्तियों को संसाधित करता है। बायोवर्ल्ड जैसी भारतीय कंपनियां भी लीफ–बेस कटलरी के निर्यात में संलग्न हैं। इन पत्तों की कुछ किस्मों में रॉयल्टी और टैक्स के संबंध में बाधाओं का सामना करना पड़ा है।

सिंगल यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध एक शुरुआत है, कड़ी कानूनी व्यवस्था भी करनी होगी ताकि व्यापारी इसका उत्पादन न कर सके। साथ ही आमजन में भी जागरूकता की आवश्यकता है कि वह इसका उपयोग न करे, व पादप आधारित वस्तुऐं ही प्रयोग में लाये ताकि हम अपनी प्रकृति को संरक्षित कर वातावरण स्वच्छ बनाने में योगदान दे।

माहुल पत्ते का एकत्रीकरण एवं दोना–पत्तल का निर्माण

42 हिंदी भाषा का मौजूदा स्वरूप

श्री कैलाश चन्द गुप्ता
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

राष्ट्र की अवधारणा में तीन तत्व अति महत्वपूर्ण हैं– भाषा, संस्कृति एवं राष्ट्र की भौगोलिक सीमा (मातृभूमि)। अतः राष्ट्रीय एकता में भाषा की भूमिका निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है। भाषा मानव समाज की बहुत बड़ी उपलब्धि है। भाषा भावों, विचारों की अभिव्यक्ति का सर्व सुलभ व सशक्त माध्यम है। किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक विकास में उस राष्ट्र की भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा मानवीय पहलुओं से जुड़े सभी क्रियाकलापों का आधार बिन्दु है। किसी भी राष्ट्र की पराधीनता में न केवल उसकी जमीन पराधीन होती है बल्कि भाषाएँ भी पराधीन हो जाती हैं। फलस्वरूप राष्ट्र और संस्कृति के प्रति मौलिक चिंतन नहीं हो पाता। जैसा कि हमने अंग्रेजों की पराधीनता को सहा है तथा उनकी अंग्रेजी का प्रभुत्व आज भी कायम है। भाषा को अत्यंत पवित्र माना गया है। प्रत्येक धर्म और जाति के लोग भाषा को प्रभु का वरदान मानते हैं।

देश की आजादी के बाद एक सामान्य भाषा का प्रश्न उठा तथा संविधान सभा के सर्वसम्मत निर्णय पर न पहुँचने की स्थिति में इसका मतदान हुआ और अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के निर्णायक मत से हिन्दी को विजयश्री मिली। भारत की अनेक क्षेत्रीय भाषाओं में से हिन्दी भी एक थी इसलिए संविधान सभा ने 14 सितंबर, 1949 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 के अंतर्गत देवनागरी लिपि में हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया। राजभाषा हिन्दी से तात्पर्य है कि सभी प्रशासनिक कार्य हिन्दी में सम्पन्न हों।

अनुच्छेद 351 में भारत सरकार को यह कर्तव्य सौंपा गया कि वह हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार बढ़ाए और विकास करे जिससे कि हिन्दी जनता की भाषा में राष्ट्र की सामूहिक अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। भारत सरकार के सरकारी कामकाज के निष्पादन के लिए हिन्दी न जानने वालों की सुविधा को दृष्टि में रखते हुए हालांकि अंग्रेजी को केंद्रीय सरकार की सह–भाषा के रूप में चालू रखने की भी स्वीकृति दी गई है जैसा कि भारतीय संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा,केंद्र तथा राज्यों की संपर्क भाषा और राज्यों के बीच परस्पर पत्र–व्यवहार की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। अतः हिन्दी को राज–काज में संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग में लाने का दायित्व हमें संविधान ने दिया है। यह सही है कि इसके प्रयोग की बाध्यता नहीं है लेकिन किसी भी स्वाधीन राष्ट्र के गौरव और आत्मविश्वास के लिए यह सर्वथा अनुरूप है कि उसके सरकारी काम–काज के सहज निष्पादन के लिए उसकी अपनी कोई देशी भाषा हो। यह निर्विवाद है कि हिन्दी ही इस देश की एकमात्र भाषा है जिसमें उसका कार्य–संचालन होना चाहिए जैसा कि हिन्दी बोलने ,समझने और लिख–पढ़ सकने वालों की संख्या देश में अधिक है।

भारत की सभी प्रादेशिक भाषाएँ राष्ट्र भाषाएँ हैं जिनकी संख्या वर्तमान में 22 है, जिनका संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लेख है। संविधान ने हिन्दी को प्रादेशिक भाषाओं के बीच संपर्क भाषा के रूप में कार्य करने के लिए चुना है, क्योंकि देश में व्यापक रूप से व्यवहार में आने वाली इतनी सरल और परिचित भाषा कोई और नहीं है। ऐसा करते समय संविधान ने इस बात की पूरी गारंटी दी है कि प्रादेशिक भाषाओं के विकास पर पूरा ध्यान दिया जाएगा। जब हिन्दी के प्रयोग की बात आती है तो उसका लेशमात्र भी यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य भाषाओं को कम महत्वपूर्ण समझा जा रहा है। संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग की बात कहना एक राष्ट्रीय प्रयोजन के लिए सुविधा की दृष्टि से है।

संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका

विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

भाषा का प्रश्न अतिमहत्वपूर्ण एवं संवेदनशील होने के कारण केंद्र को यह देखने की जिम्मेदारी है कि वह भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का लोक सेवाओं के संबंध में गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा। हिन्दी पूर्णरूपेण एक वैज्ञानिक भाषा है जिसका अति प्राचीन इतिहास रहा है। निःसंदेह हिंदी आज विश्व मंच पर उन सभी चुनौतियों का सामना करने में सक्षम सिद्ध हुई है जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी, आर्थिक विकास व संचार के क्षेत्र में उपजी हैं। आज आवश्यकता है भाषा के प्रति सहिष्णुता का भाव रखे जाने की जिसके अंतर्गत सार्वभौमिक शब्दों को जैसा का तैसा स्वीकार कर लिया जाये चाहे वे किसी भी भाषा के क्यों न रहे हों। हमें हिंदी को प्रवाहमान बनाए रखना होगा ताकि वह अपना वर्चस्व बनाए रखने में सफल सिद्ध हो। हिंदी को आमजन की भाषा बनाए रखना होगा। वही भाषा मान्यता प्राप्त करेगी जिसमें काल, समय, परिस्थिति के साथ कदम मिलाने का सामर्थ्य होगा जो कि हिंदी में है। हिंदी में आज रोजी–रोटी से जोड़ने की सामर्थ्यता है यही कारण है कि पूरे देश भर में बिना दुविधा के हर भाषा–भाषी इससे जुड़ा हुआ है, जो कि जीवन का कटु सत्य है।

जहाँ तक हिन्दी भाषा की बात है, वह खुद इतनी सक्षम और सशक्त है कि विकास के पथ पर निरंतर अग्रसर है। वैश्वीकरण के बाद हिन्दी का भी विस्तार हो रहा है। हिन्दी फिल्में विदेशों में धूम मचा रही हैं। इसे सिर्फ भारतीय या भारत के गैर–हिन्दी भाषी ही नहीं देखते हैं बल्कि विदेशी भी देखते हैं और समझने की कोशिश करते हैं। आज हिन्दी एक बड़ा बाजार बन गया है। निश्चित ही हिन्दी की भाषा जितनी समृद्ध है, उतने ही विचार भी परिपक्व हैं। हिन्दी को रोकना संभव नहीं है, मगर हमारी जिम्मेदारी है कि हम हिन्दी को स्वप्रेरणा से अपनाएं तथा गौरवान्वित हों। आज जरूरत है हिन्दी की पूर्वाग्रहमुक्त समीक्षा करने की, उसमें आ रहे दिलचस्प बदलावों और रुझानों का अध्ययन करने तथा उसके समक्ष मौजूद चिंताओं और चुनौतियों का व्यावहारिक समाधान ढूँढने का प्रयास करने की ताकि हिन्दी भाषा काल की रफ्तार से ताल मिलाने में सक्षम सिद्ध हो।

आ री नींद, लाल को आ जा।
उसको करके प्यार सुला जा।।
तुझे लाल हैं ललक बुलाते।
अपनी आँखों पर बिठलाते।।
तेरे लिए बिछाई पलकें।
बढ़ती ही जाती हैं ललकें।।
क्यों तू है इतनी इठलाती।
आ–आ मैं हूँ तुझे बुलाती।।
गोद नींद की है अति प्यारी।
फूलों से है सजी–सँवारी।।
उसमें बहुत नरम मन भाई।
रूई की है पहल जमाई।।

बिछे बिछौने हैं मखमल के।
बड़े मुलायम सुंदर हलके।।
जो तू चाह लाल उसकी कर।
तो तू सो जा आँख मूँदकर।।
मीठी नींदों प्यारे सोना।
सोने की पुतली मत खोना।।
उसकी करतूतों के ही बल।
ठीक–ठीक चलती है तन कल।।

– **अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'**

43 अनुवाद और उसके प्रकार – एक झलक

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर

अनुवाद से तात्पर्य है– किसी एक भाषा में जो कहा गया है उसे दूसरी भाषा में कहना अर्थात अनुवाद भाषा का वह जादुई व्यवहार है जो भाषा में कही गई अभिव्यक्ति को उसकी पूरी संवेदना, सुन्दरता और अदायगी के अंदाज के साथ दूसरी भाषा में ऐसे उतारता है कि मूल संवेदना का रस–रंग तो जैसे का तैसा बना ही रहता है, जिस भाषा में उसको उतारा गया है उस पर भी इस रस–रंग–रूप की संवेदना का अतिभार भी महसूस नहीं होता। अनुवाद ऐसी परकाया प्रवेश प्रक्रिया है जो स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की काया को एक साथ जीवन्त बनाये रखती है। अनुवाद विविध भाषाओं के मध्य एक सेतु का काम करता है। अनुवाद के माध्यम से व्यक्ति आसानी से दूसरी भाषा के भाव और विचार समझने में सक्षम हो जाता है।

अनुवाद के प्रकार

अनुवाद के अनेक प्रकार है :

1. गद्य–पद्य पर आधारित प्रभेद
2. साहित्य विधा पर आधारित प्रभेद
3. विषय आधारित प्रभेद
4. अनुवाद की अन्य प्रकृति पर आधारित प्रभेद
5. अनुवाद के कुछ अन्य प्रभेद

गद्य–पद्य पर आधारित प्रभेद

1. **गद्यानुवादः** गद्यानुवाद सामान्यतः गद्य में किए जाने वाले अनुवाद को कहते हैं। किसी भी गद्य रचना का गद्य में ही किया जाने वाला अनुवाद गद्यात्मक कहलाता है। किन्तु कुछ विशेष कृतियों का पद्य से गद्य में भी अनुवाद किया जाता है। जैसे–'मेघदूतम' का हिन्दी कवि नागार्जुन द्वारा किया गया गद्यानुवाद।

2. **पद्यानुवादः** पद्य का पद्य में ही किया गया अनुवाद पद्यानुवाद की श्रेणी में आता है। दुनिया भर में विभिन्न भाषाओं में लिखे गये काव्यों एवं महाकाव्यों के अनुवादों की संख्या अत्यन्त विशाल है। इलियट के 'वेस्टलैण्ड', कालिदास के 'मेघदूतम' एवं 'कुमारसंभवम' तथा टैगोर की 'गीतांजलि' का विभिन्न भाषाओं में पद्यानुवाद किया गया है। साधारणतः पद्यानुवाद करते समय स्रोत–भाषा में व्यवहृत छन्दों का ही लक्ष्य–भाषा में व्यवहार किया जाता है।

3. **छन्दमुक्तानुवादः** इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक को स्रोत–भाषा में व्यवहार किए गए छन्दों को अपनाने की बाध्यता नहीं होती। अनुवादक विषय के अनुरूप लक्ष्य–भाषा का कोई भी छन्द चुन सकता है। साहित्य में ऐसे अनुवाद विपुल संख्या में उपलब्ध हैं।

साहित्य विधा पर आधारित प्रभेद

1. **काव्यानुवादः** स्रोत–भाषा में लिखे गये काव्य का लक्ष्य–भाषा में रूपान्तरण काव्यानुवाद कहलाता है। यह आवश्यकतानुसार गद्य, पद्य एवं मुक्त छन्द में किया जा सकता है। होमर के महाकाव्य 'इलियड' एवं कालिदास के 'मेघदूतम' एवं 'ऋतुसंहार' इसके उदाहरण हैं।

2. **नाट्यानुवादः** किसी भी नाट्य कृति का नाटक के रूप में ही अनुवाद करना नाट्यानुवाद कहलाता है। नाटक रंगमंचीय आवश्यकताओं एवं दर्शकों को ध्यान में रखकर लिखा जाता है। अतः इसके अनुवाद के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। संस्कृत के नाटकों के हिन्दी अनुवाद

तथा शेक्सपियर के नाटकों के अन्य भाषाओं में किए गए अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

3. **कथा अनुवादः** कथा अनुवाद के अन्तर्गत कहानियों एवं उपन्यासों का कहानियों एवं उपन्यासों के रूप में ही अनुवाद किया जाता है। विश्व प्रसिद्ध उपन्यासों एवं कहानियों के अनुवाद काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय हैं। मोपासाँ एवं प्रेमचन्द की कहानियों का दुनिया की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ।

रूसी उपन्यास 'माँ', अंग्रेजी उपन्यास 'लैडी चैटर्ली का प्रेमी' तथा हिन्दी में 'गोदान', 'त्यागपत्र' तथा 'नदी के द्वीप' के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

4. **अन्य साहित्यिक विधाओं के अनुवादः** अन्य साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत रेखाचित्र, निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी एवं आत्मकथा आदि के अनुवाद आते हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू की कृति 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' तथा महात्मा गाँधी एवं हरबंश राय बच्चन की आत्मकथाओं के विभिन्न भाषाओं में किए गए अनुवाद इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

विषय आधारित प्रभेद

1. **ललित साहित्यानुवादः** ललित साहित्यानुवाद के अन्तर्गत साहित्यिक विधाओं को रखा जाता है। कविता, ललित निबन्ध, कहानी, डायरी, आत्मकथा उपन्यास आदि।

2. **धार्मिक–पौराणिक साहित्यानुवादः** जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि धार्मिक पौराणिक साहित्यानुवाद में विभिन्न धर्मों के मानक धर्मग्रन्थों, गीता, भागवत, कुरान, बाइबिल आदि का अनुवाद किया जाता है। वेद, उपनिषद आदि भी इसके साथ शामिल हैं।

3. **वैज्ञानिक एवं तकनीकी सामग्री के अनुवादः** वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद में मुख्य है शैली। साहित्यिक अनुवाद में प्रायः 'क्यों' से ज्यादा कैसे' का महत्व होता है जबकि वैज्ञानिक अनुवाद में कैसे' से ज्यादा 'क्या' का महत्व होता है। इसमें भावानुवाद त्याज्य है और प्रायः शब्दानुवाद अपेक्षित है। इसमें पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अपेक्षित है, ध्वन्यात्मक या व्यंग्यात्मक शब्दावली का नहीं। कुल मिलाकर इस प्रकार के अनुवाद में सूचना, संकल्पना तथा तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं। सबसे जरूरी बात यह है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद में अनुवादक विषय का सम्यक जानकार और साथ ही प्रशिक्षित भी होने चाहिए तभी वह अनुवाद के साथ न्याय कर पाएगा।

4. **विधि का अनुवादः** इसमें एक भाषा की विधि सम्बन्धी अर्थात् कानून की सामग्री को दूसरी भाषा में अनुवाद किया जाता है। कानून की किताबें, अदालत के मुकदमें, तत्सम्बन्धी विभिन्न आवेदन–पत्र, कानूनी संहिताएं, नियम–अधिनियम, संशोधित अधिनियम आदि कानूनी अनुवाद के प्रमुख हिस्से हैं। इस प्रकार के अनुवाद में प्रत्येक शब्द का अपना विशेष महत्व होता है। इसमें भावार्थ नहीं शब्दार्थ महत्वपूर्ण होता है। इसके प्रत्येक शब्द का अर्थ स्पष्ट होता है। एक शब्द का एक ही अर्थ अपेक्षित होता है। इस प्रकार के अनुवाद की भाषा पूरी तरह तकनीकी प्रकृति की होती है।

5. **प्रशासनिक अनुवादः** प्रशासनिक अनुवाद से तात्पर्य है वह अनुवाद जिसमें एक भाषा की प्रशासन सम्बन्धी सामग्री को दूसरी भाषा में परिवर्तित किया जाता है। प्रशासनिक अनुवाद का सम्बन्ध सरकारी कार्यालयों से होने के कारण इसे कार्यालयी अनुवाद भी कहा जाता है। इस अनुवाद के अन्तर्गत प्रशासन के सभी कागजात, सरकारी पत्र, परिपत्र, सूचनाएं– अधिसूचनाएं, नियम–अधिनियम, प्रेस विज्ञप्तियाँ आदि आते हैं। केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, संसद, विभिन्न मंत्रालय आदि में द्विभाषी तथा बहुभाषी स्थिति के कारण प्रशासनिक अनुवाद के बिना काम नहीं चलता। यहाँ भी पारिभाषिक शब्दावली का सहारा लिया जाता है। प्रशासनिक अनुवाद में 'कथ्य' अर्थात् 'कही गई बात' महत्वपूर्ण होती है।

6. **मानविकी एवं समाजशास्त्र का अनुवादः** मानविकी एवं समाजशास्त्र से सम्बन्धित सामग्रियों के अनुवाद के लिए

अनुवादक का विषय ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इस तरह का अनुवाद अनुसंधान, सर्वेक्षण, परियोजना एवं शैक्षिक आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। इस तरह के अनुवाद में सरलता एवं स्पष्टता अपेक्षित होती है।

7. संचार माध्यमों की सामग्री का अनुवादः वर्तमान युग के संचार माध्यमों ने मानव–विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है। संचार माध्यमों के जरिए ही वह देश–विदेश और समग्र दुनिया की जानकारी हासिल करता है। किन्तु विविध देशों में विविध भाषाएं होने के कारण संचार माध्यम की सामग्री का अनुवाद महत्वपूर्ण बना हुआ है। इस अनुवाद के अन्तर्गत मुख्यतः दैनिक समाचार, सभी प्रकार की पत्र–पत्रिकाओं, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी आदि क्षेत्रों की सामग्री के अनुवाद आते हैं। इन सम्पर्क माध्यमों में दुनिया के सारे ज्ञान–विज्ञान की सूचना समाहित होती है। इसमें राजनीति, व्यापार, खेल, विज्ञान, साहित्य आदि की अर्थात् जीवन से सम्बन्धित सभी विषय–क्षेत्रों की सामग्री होती है।

उपर्युक्त प्रकारों के अलावा विषयाधारित अनुवाद में संगीत, ज्योतिष, पर्यावरण, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अभिलेखों, गजेटियरों आदि की सामग्री, वाणिज्यानुवाद, काव्यशास्त्र भाषाविज्ञान सम्बन्धी अनेकानेक विषयों को शामिल किया जा सकता है।

अनुवाद की अन्य प्रकृति पर आधारित प्रभेद

1. मूलनिष्ठः मूलनिष्ठ अनुवाद कथ्य और शैली दोनों की दृष्टि से मूल का अनुगमन करता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक का प्रयास रहता है कि अनूदित विचार या कृति स्रोत–भाषा के विचारों एवं अभिव्यक्ति के निकट रहे।

2. मूलमुक्तः मूलमुक्त अनुवाद को भोलानाथ तिवारी ने मूलाधारित अथवा मूलाधृत अनुवाद भी कहा है। वैसे तो मूलमुक्त का अर्थ ही होता है मूल से हटकर, किन्तु किसी भी अनुवाद में विचारों के स्तर पर परिवर्तन की गुंजाइश नहीं होती। अतः यहाँ मूल से भिन्न का अर्थ है शैलीगत भिन्नता तथा कहावतों एवं उपमानों का देशीकरण करने की अनुवादक की स्वतंत्रता।

अनुवाद के कुछ अन्य प्रभेद

1. शब्दानुवादः स्रोत–भाषा के शब्द एवं क्रम को उसी प्रकार लक्ष्य–भाषा में रूपान्तरित करना शब्दानुवाद कहलाता है। यहाँ अनुवादक का लक्ष्य मूल–भाषा के विचारों को रूपान्तरित करने से अधिक शब्दों का यथावत् अनुवाद करने से होता है। शब्द एवं शब्द क्रम की प्रकृति हर भाषा में भिन्न होती है। अतः यांत्रिक ढंग से उनका यथावत् अनुवाद करते जाना काफी कृत्रिम, दुर्बोध्य एवं निष्प्राण हो सकता है। शब्दानुवाद उच्च कोटि के अनुवाद की श्रेणी में नहीं आता।

2. भावानुवादः साहित्यिक कृतियों के संदर्भ में भावानुवाद का विशेष महत्व होता है। इस प्रकार के अनुवाद में मूल–भाषा के भावों, विचारों एवं सन्देशों को लक्ष्य–भाषा में रूपान्तरित किया जाता है। इस सन्दर्भ में भोलानाथ तिवारी का कहना है कि 'मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है तो उसका भावानुवाद करते हैं।' भावानुवाद में सम्प्रेषणीयता सबसे महत्वपूर्ण होती है। इसमें अनुवादक का लक्ष्य स्रोत–भाषा में अभिव्यक्त भावों, विचारों एवं अर्थों का लक्ष्य–भाषा में अन्तरण करना होता है। संस्कृत साहित्य में लिखे गए कुछ ललित निबन्धों के हिन्दी अनुवाद बहुत ही सफल सिद्ध हुए हैं।

3. छायानुवादः अनुवाद सिद्धान्त में छाया शब्द का प्रयोग अति प्राचीन है। इसमें मूल–पाठ की अर्थ छाया को ग्रहण कर अनुवाद किया जाता है। छायानुवाद में शब्दों, भावों तथा संकल्पनाओं के संकलित प्रभाव को लक्ष्य–भाषा में रूपान्तरित किया जाता है। संस्कृत में लिखे गए भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम' एवं कालिदास के नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' के हिन्दी अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

4. सारानुवादः सारानुवाद का अर्थ होता है किसी भी विस्तृत विचार अथवा सामग्री का संक्षेप में अनुवाद प्रस्तुत करना। लम्बी रचनाओं, राजनैतिक भाषणों, प्रतिवेदनों आदि व्यावहारिक कार्य के अनुवाद के लिए सारानुवाद काफी उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार के अनुवाद में मूल–भाषा के कथ्य को सुरक्षित रखते हुए लक्ष्य–भाषा में उसका रूपान्तरण कर दिया जाता है। सारानुवाद का प्रयोग मुख्यतः दुभाषिए, समाचार पत्रों एवं दूरदर्शन के संवाददाता तथा संसद एवं विधान मण्डलों के रिकार्डकर्ता करते हैं।

5. व्याख्यानुवादः व्याख्यानुवाद को भाष्यानुवाद भी कहते हैं। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल सामग्री के साथ–साथ उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। व्याख्यानुवाद में अनुवादक का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण होता है और कई जगहों में तो अनुवादक का व्यक्तित्व एवं विचार मूल रचना पर हावी हो जाता है। बाल गंगाधर तिलक द्वारा किया गया 'गीता' का अनुवाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

6. आशु अनुवादः आशु अनुवाद को वार्तानुवाद भी कहते हैं। दो भिन्न भाषाओं, भावों एवं विचारों का तात्कालिक अनुवाद आशु अनुवाद कहलाता है। आज जैसे विभिन्न देश एक–दूसरे के परस्पर समीप आ रहे हैं इस प्रकार के तात्कालिक अनुवाद का महत्व बढ़ रहा है। विभिन्न भाषा–भाषी प्रदेशों एवं देशों के बीच राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्व के क्षेत्रों में आशु अनुवाद का सहारा लिया जाता है।

7. आदर्श अनुवादः आदर्श अनुवाद को सटीक अनुवाद भी कहा जाता है। इसमें अनुवादक आचार्य की भूमिका निभाता है तथा स्रोत–भाषा की मूल सामग्री का अनुवाद अर्थ एवं अभिव्यक्ति सहित लक्ष्य–भाषा में निकटतम एवं स्वाभाविक समानार्थों द्वारा करता है। आदर्श अनुवाद में अनुवादक तटस्थ रहता है तथा उसके भावों एवं विचारों की छाया अनूदित सामग्री पर नहीं पड़ती है। रामचरितमानस, भगवद् गीता, कुरान आदि धार्मिक ग्रन्थों के सटीक अनुवाद इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

8. रूपान्तरणः आधुनिक युग में रूपान्तरण का महत्व बढ़ रहा है। रूपान्तरण में स्रोत–भाषा की किसी रचना का अन्य विधा (साहित्य रूप) में रूपान्तरण कर दिया जाता है। संचार माध्यमों के बढ़ते हुए प्रभाव एवं उसकी लोकप्रियता को देखते हुए कविता, कहानी आदि साहित्य रूपों का नाट्यानुवाद विशेष रूप से प्रचलित हो रहा है। ऐसे अनुवादों में अनुवादक की अपनी रुचि एवं कृति की लोकप्रियता महत्वपूर्ण होती है। जैनेन्द्र, कमलेश्वर, अमृता प्रीतम, भीष्म साहनी आदि की कहानियों के रेडियो रूपान्तरण प्रस्तुत किए जा चुके हैं। 'कामायनी' महाकाव्य का नाट्य रूपान्तर काफी चर्चित हुआ है।

लड़ना उसे पड़ता मगर।
और जीतने के बाद भी,
रणभूमि में वह देखता है सत्य को रोता हुआ;
वह सत्य, है जो रो रहा इतिहास के अध्याय में
विजयी पुरुष के नाम पर कीचड़ नयन का डालता।

— **रामधारी सिंह 'दिनकर'**

44 विलुप्त होते जल स्रोत

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

दुनियाभर में ताजे पेयजल के स्रोत तेजी से खत्म होते जा रहे हैं, जिससे निकट भविष्य में धरती पर मानव जीवन के लिए संकट पैदा हो सकता है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, सड़कों, रेल मार्ग आदि के लिए जमीन की बढ़ती माँग, कृषि के बेहद तेजी से विस्तार के चलते लगभग पैंतीस फीसदी जल स्रोत जैसे झील, नदियाँ, दलदल और खाड़ियां खत्म हुए हैं। दुनिया की पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बेहद महत्वपूर्ण माने जाने वाले जलस्रोत दुनिया भर में 12 मिलियन वर्ग किलोमीटर में फैले हुए हैं। लेकिन इनकी संख्या में कमी होने की दर में तेजी से वृद्धि हुई है।

जल स्रोतों में नदियों के बाद तालाब का सर्वाधिक महत्व रहा है। मानव, जीव–जंतु के लिए पेयजल सहित कृषि कार्यो के लिए भी तालाब प्रमुख संसाधनों में से एक रहा है। प्राचीन काल से ही तालाब जल स्रोत का एक महत्वपूर्ण माध्यम रहा है। जिसकी महत्ता को लोगों ने नजरअंदाज किया। हम भौतिकतावादी व्यवस्था के तहत तरह–तरह के नए प्रयोग कर अपने जीवन को स्वस्थ बनाने में जुटे अवश्य हैं, किन्तु, प्राकृतिक वातावरण को बनाए रखना हमारे जीवन के लिए कितना उपयोगी है, इसे हमें नहीं भूलना चाहिए। आज ग्लोबल वार्मिंग का खतरा बढ़ गया है। जल संचय, जल बचाओ, पर्यावरण की रक्षा अनेकों प्रकार के अभियान आज महज हमारे लिए सिर्फ एक नारा बनता दिख रहा है। हम इस बात को भी भूल रहे हैं कि हमारें पूर्वज अपने–अपने निजी भूमि पर तालाब खुदवाते थे। आम जन–जीवन के अलावा मवेशी, कृषि कार्य, पूजा पाठ सभी में उसका उपयोग बड़े ही शान से होता था। किन्तु समय के साथ तालाबों के मिटते अस्तित्व से आज हमारे बीच पर्यावरण असंतुलन का खतरा मंडराने लगा है। जिसका सीधा असर मानवीय जीवन पर पड़ ही रहा है, वहीं जल संकट का खतरा मंडरा रहा है। लोग अभी से ही बूंद–बूंद पानी के लिए भटकने को विवश हैं। अगर तालाब और पोखरों पर अभी से ही हम ध्यान नहीं देते हैं, तो आने वाला समय भयानक हो सकता है।

समय बदल रहा है, हर ओर तालाबों का अतिक्रमण हो रहा है। कुछ समय पहले तक तो कहीं–कहीं, किसी–किसी तालाब में पानी देखने को मिल भी जाता था कितु अब वह भी नहीं दिखता है। आवश्यकता है कि सरकारी स्तर पर तालाबों को चिन्हित कर इसकी उड़ाही कराई जाए।

तालाब जल संचय और जल स्रोत के लिए जरूरी है। इसके लिए पंचायत प्रतिनिधियों को आगे आना चाहिए। पंचायत स्तर की मनरेगा योजना से भी इसकी उड़ाही हो सकती है। इसके लिए जनप्रतिनिधियों को आगे आना चाहिए, अन्यथा दिन–प्रतिदिन जल संकट की स्थिति विकट होती चली जाएगी। तालाब की उड़ाही राजनीतिक और सरकारी सहयोग के बिना संभव नहीं है। इसके अलावा समाज के हर वर्ग के लोगों को आगे आना होगा।

एक स्थानीय जल स्रोत

45 विश्व हिंदी दिवस

श्री विनयचंद्रन. एम.
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर

हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। विविधताओं के देश में अनेक भाषा होने के बावजूद हिंदी भाषा ही लोगों को एक सूत्र में बांधे रखती है। यह दुनिया भर में बसे भारतीयों में अलग भाषा, वेशभूषा और संप्रदाय होने के बावजूद भावनात्मक रूप से एक साथ जोड़ने का काम भी करती है। इसी अहमियत को ध्यान में रखकर हर साल 10 जनवरी का दिन विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन 10 जनवरी 1975 को नागपुर में आयोजित हुआ था और तब से इस दिन को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसका उद्देश्य विश्व में हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में पेश करना और भारत के आत्मीय और उदात्त संस्कृति का परिचय करवाना भी है।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। महात्मा गाँधी सहित अनेक राष्ट्रीय नेता हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने लगे थे। 1918 में महात्मा गाँधी ने "हिंदी साहित्य सम्मेलन" में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिये सुझाव दिया था। उन्होंने इसे "जनमानस की भाषा" कहा था। 1947 में स्वतंत्रता पाने के बाद हिंदी का विकास तेजी से हुआ। मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, देवकीनंदन खत्री, सेठ गोविन्ददास, काका कालेलकर, प्रेमचंद, रामचन्द्र शुक्ल, महादेवी वर्मा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र जैसे लेखकों ने हिंदी के विकास में अमूल्य योगदान दिया है। 13 सितम्बर 1949 को भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित नेहरु ने कहा कि किसी विदेशी भाषा से कोई देश महान नहीं बन सकता, देश की उन्नति अपनी भाषा से ही हो सकती है।

सन 1949 सितम्बर 14 को संविधान सभा में लम्बी चर्चा के बाद हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकारा गया। इसके बाद संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक

राजभाषा के संबंध में व्यवस्था की गयी। इसकी स्मृति को ताजा रखने के लिये 14 सितम्बर का दिन प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

14 सितम्बर की शाम को संविधान सभा में हुई बहस के समापन के बाद जब संविधान का भाषा संबंधी तत्कालीन भाग 14 और वर्तमान भाग 17, संविधान का भाग बन गया तब डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने भाषण में बधाई के कुछ शब्द कहे। उन्होंने कहा "आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जब कि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है, जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी। इस अपूर्व अध्याय का देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। अपने वक्तव्य के उपसंहार में उन्होंने कहा वह अविस्मरणीय है। उन्होंने कहा "यह मानसिक दशा का भी प्रश्न है जिसका हमारे समस्त जीवन पर प्रभाव पड़ेगा। हम केंद्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे उससे हम एक–दूसरे के निकटतर आते जायेंगे। आखिर अंग्रेजी से हम निकटतर आये हैं, क्योंकि वह एक जनमानस में स्वीकृत होने वाली भाषा थी। अब उस अंग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है। इससे अवश्यमेव हमारे संबंध घनिष्ठतर होंगे, विशेषतर इसलिये कि हमारी परम्पराएँ एक ही हैं, हमारी संस्कृति एक ही है और हमारी सभ्यता में सब बातें एक ही हैं। अतएव यदि हम इस सूत्र को स्वीकार नहीं करते तो परिणाम यह होता कि या तो इस देश में बहुत सी भाषाओं का प्रयोग होता या वे प्रांत पृथक हो जाते जो बाध्य होकर किसी भाषा विशेष को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। हमने यथासम्भव बुद्धिमानी का कार्य किया है और मुझे हर्ष है, मुझे प्रसन्नता है और मुझे आशा है कि भावी संतति इसके लिये हमारी सराहना करेगी"।

यह कहा जाता है कि किसी भी राष्ट्र की संस्कृति धर्म, दर्शन और गौरवशाली परंपराओं को समझने के लिये उसकी अपनी भाषा ही सशक्त माध्यम हो सकती है। हिंदी भारतीय दर्शन को मुखरित करने वाली भाषा है। हिंदी सहज और सरल भाषा है। इसे आसानी से सीखा जा सकता है। आशा है कि वह दिन जल्दी आयेगा, जब हिंदी को उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सभी जगह पूर्णतयाः स्वीकार किया जायेगा। देश के प्रधानमंत्रियों ने भी विश्व मंच पर हिंदी का मान बढ़ाया है। भाषा व्यक्ति को जोड़ती है और भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति का परिवार, समाज, गाँव, नगर, महानगर, राज्य और देश से जुड़ाव होता है। भारत को आत्मनिर्भर बनाने में, पूरे भारत को एक सूत्र में बाँध रखने वाली भाषा के रूप में हिंदी का योगदान बहुत ही अहम है।

सखि, वसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय–वसना नव–वय–लतिका
मिली मधुर प्रिय–उर तरु–पतिका,
मधुप–वृंद बंदी–
पिक–स्वर नभ सरसाया।

– **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'**

46 "संघर्ष ही जीवन है"

श्री अनूप कुमार वर्मा
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

संघर्ष न हो तो जीवन क्या है।
संघर्ष हो तो जीवन है।

संघर्ष जीने की एक राह है।
संघर्ष जीवन में न हो तो जीवन व्यर्थ है।

संघर्ष ही जीवन, जीवन ही संघर्ष है।
संघर्ष ही जीवन जीने की राह दिखाता है।

संघर्ष के बिन कुछ नहीं मिलता
संघर्ष करे तो सब कुछ मिलता है।

संघर्ष ही मनुष्य को धैर्यवान बनाता है।
संघर्ष ही मनुष्य को जीवन की राह पर चलना सिखाता है।

संघर्ष ही जीवन का आधार कहलाता है।
संघर्ष ही जीवन को कामगार बनाता है।

संघर्ष ही जीवन का एक संसार है।
संघर्ष ही जीवन का एक आधार है।

47 पर्यावरण हमारा है

श्री आशीष सिंह बिष्ट,
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

पीकर घूंट प्रदूषण का
प्रकृति दम तोड़ती जाएगी,
आखिर, पर्यावरण के रखवालों को
कब शर्म आएगी ?

पेड़ लगाने का था जिम्मा
परंतु पेड़ कटते जाते हैं,
उजाड़ कर बेजुबां परिंदों को
हम अपना महल बनाते हैं।

नहीं मिलती सुनने को अब बुलबुल की कहानी
पशु–पक्षी कुछ लुप्त हुए, जो थे याद जुबानी,
हरियाली भी कम हुई और दूषित हुआ पानी
झेल रही प्रकृति, इस मानुष की नादानी।

आज हवा, भू, जल है जख्मी
यह सारा दोष हमारा है,
बचा सको तो बचा लो
यह पर्यावरण हमारा है।

48 प्रकृति और जीवन

श्री लक्ष्मीकान्त तिवारी
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

हे! मानुष तेरा क्या ही कहना, तेरे कितने ग्रास हैं,
जीवित धरती लूट रहा है, मंगल पर तुझे आस है।
झूठे सुख और चकाचौंध में, कालग्रास इस धरा के हो गये,
पेड़ कट गये साधन लुट गये, पर मिटा न तेरा ग्रास है।

सौम्य सरल सनातन जन सब, मूल छोड़ मन भटकायेंगे,
धरा लुटेगी, वृक्ष कटेंगे, जलवायु मिट जायेंगे।
चिड़ियों के मृदु चूं चूं से कोलाहल में सब डूब रहे,
जीवन दायी माँ प्रकृति को दानव बनकर लूट रहे।

मानव जो ना चेत गया तू, हाथ ना कुछ रह जायेगा,
आने वाले नवजातों को, क्या ही मुख दिखलायेगा।
चलो करें स्वमान समर्पण, ध्यान समर्पण वसुधा को,
संरक्षण हित साधन करके, वरण करें अमृतपथ को।

हर हाथ बढ़े सब साथ बढें, जन जन में इतनी बात बढ़े,
सब एक सम, सब एक प्राण, सब एक धरा के वासी हैं,
सबकी अपनी गरिमा है, सब भू पर सम अधिशासी है।

कृपा करें जन मानस पर, कृपा करें हर जीव पर,
वरण करें निःस्वार्थ प्रकृति को, हर जीवन की है नींव जो,
जीवन देती है प्रकृति, जीव सुकून के साधन हैं
सत्य सनातन जन जिस बल पे, पाते रहे संवर्धन है।

चिंतन मनन से सर्वोपरि, कारज कुछ करना होगा,
मातृ तुल्य इस धरा को फिर से, हरा भरा करना होगा।

49 वन जीवन है

श्री रमाकान्त मिश्र एवं श्रीमती रेखा मिश्र
भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

वन जीवन है, जीवन वन है।
वन में जीवन, जीवन में वन,
वन जीवन है, जीवन वन है।

छल है, बल है और कौशल है
सबल–अबल है, दल, एकल है
सचल, अचल है, नकल नवल है
जीवन में भी और वन में भी
जीवन वन है, वन जीवन है।

अगर मगर है, सगर डगर है
जगर–मगर है, अपर अवर है
नित कलरव है, नित नीरव है
जीवन में भी और वन में भी
जीवन वन है, वन जीवन है।

जल है, थल है और दलदल है
कल है पल भर, भय पल पल है
काल कराल की गति चंचल है
वन में भी और जीवन में भी।
वन जीवन है जीवन वन है।

डर है, पर है आस निरंतर
बढ़ने का प्रयास निरंतर
जन्म, प्रणय और मृत्यु निरंतर
जीवन में भी और वन में भी
जीवन वन है, वन जीवन है।

वन जीवन है, जीवन वन है।
वन में जीवन, जीवन में वन,
वन जीवन है, जीवन वन है।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

श्री रमाकान्त मिश्र
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री लक्ष्मीकान्त तिवारी
अनुसंधान सहायक

श्री आशीष सिंह बिष्ट
स्टैनो ग्रेड – II

श्री अवनीश कुमार
हिन्दी अनुवादक (संविदा)

श्री अनूप कुमार वर्मा
संविदाकर्मी

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

डॉ. माला राठौर
वैज्ञानिक – 'एफ'

डॉ. बी. पी. टम्टा
वैज्ञानिक – 'एफ'

डॉ. के. पी. सिंह
वैज्ञानिक – 'ई'

श्री मुकेश भट्ट
तकनीकी अधिकारी

श्री पुष्पेन्द्र सिंह
तकनीशियन

श्री सचिन कुमार
तकनीशियन

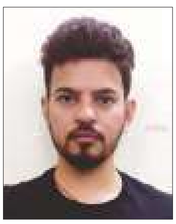

श्री अरूण उनियाल
परियोजना सहायक

श्री रोहन सोलंकी
एम.टी.एस.

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

डॉ. जगदीश सिंह
वैज्ञानिक – 'एफ'

डॉ. वनीत जिश्टू
वैज्ञानिक – 'ई'

श्री पवन कुमार
वैज्ञानिक – 'ई'

डॉ. रंजीत कुमार
वैज्ञानिक – 'ई'

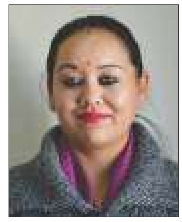

डॉ. स्वर्ण लता
वैज्ञानिक – 'डी'

श्री पीताम्बर सिंह नेगी
वैज्ञानिक – 'डी'

सुश्री सविता कुमारी बन्याल
मुख्य तकनीकी अधिकारी

डॉ. जोगिंद्र सिंह
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री अखिल कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री दुष्यंत कुमार
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

सुश्री नीरजा ठाकुर
परियोजना सहायक

श्री पंकज कुमार
परियोजना सहायक

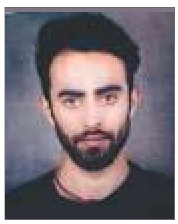

श्री भुवन वर्मा
परियोजना सहायक

सुश्री आस्था चौहान
परियोजना अध्येता

सुश्री मीनाक्षी
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

सुश्री आँचल वर्मा
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

सुश्री हसीना बानो
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

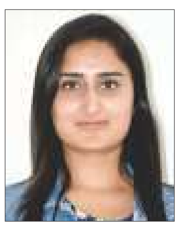

सुश्री श्वेता भिमटा
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री ऋषभ शर्मा
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

सुश्री वर्षा
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

श्री कैलाश चन्द गुप्ता
सहायक निदेशक (राजभाषा)

डॉ. अदिति टेलर
वैज्ञानिक – 'बी'

डॉ. अंजलि जोशी
वैज्ञानिक – 'बी'

डॉ. पूजा शर्मा
वैज्ञानिक – 'बी'

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

श्रीमती नीलू सिंह
निदेशक (प्रभारी) एवं
वैज्ञानिक – 'जी'

डॉ. फातिमा शिरीन
वैज्ञानिक – 'जी'

डॉ. ननिता बेरी
वैज्ञानिक – 'एफ'

श्री कौशल त्रिपाठी
वैज्ञानिक – 'बी'

श्री मनीष कुमार विजय
वैज्ञानिक – 'बी'

श्री नीरज प्रजापति
वैज्ञानिक – 'बी'

श्री निखिल वर्मा
वैज्ञानिक – 'बी'

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री डी. पी. झारिया
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

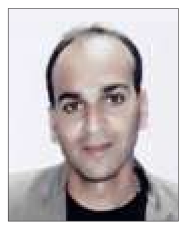

श्री सौरभ दुबे
वरिष्ठ तकनीकी सहायक

सुश्री निकिता राय
तकनीकी सहायक

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

श्री वी. एस. शेट्टेपनवर
समूह समन्वयक (अनुसंधान)

श्री राकेश कुमार
वैज्ञानिक – 'एफ'

श्री बी. एस. चन्द्रशेखर
वैज्ञानिक – 'ई'

डॉ. संदीप चक्रवर्ती
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री एल. मन्जूनाथ
वरिष्ठ तकनीशियन

श्री रोहित शर्मा
शोध छात्र

श्री शिवराज के. एस.
पौधशाला सहायक

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

श्री अजय कुमार
वैज्ञानिक – 'डी'

वन उत्पादकता संस्थान, राँची

श्री रवि शंकर प्रसाद
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री दीनानाथ पाण्डेय
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्री रिकेश कुमार
कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर

श्री विनय चन्द्रन एम.
स्टेनो ग्रेड – I

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
कनिष्ठ अनुवादक

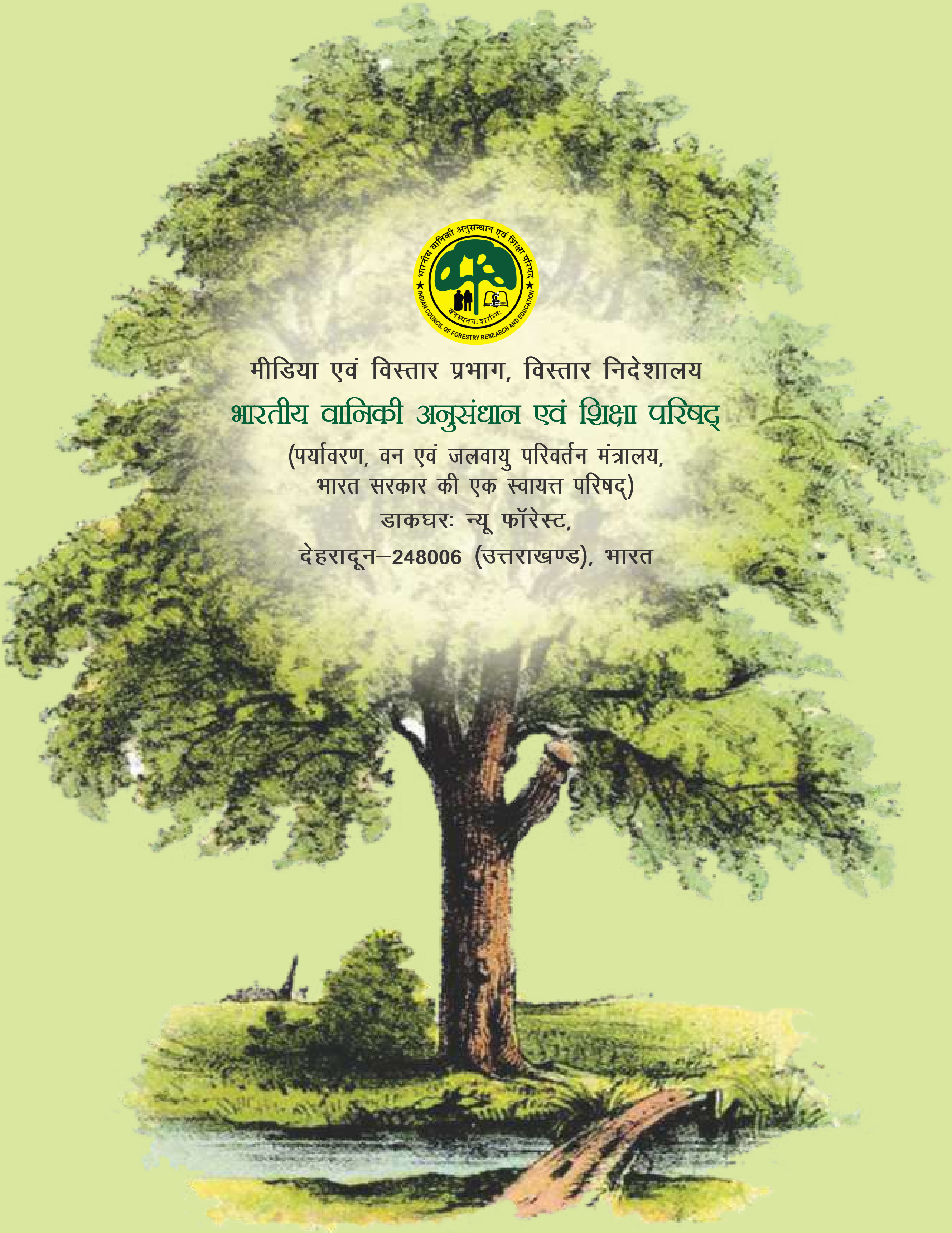

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय,
भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
डाकघरः न्यू फॉरेस्ट,
देहरादून–248006 (उत्तराखण्ड), भारत